वनस्पति वाणी

सितम्बर, 2020 अंक 29

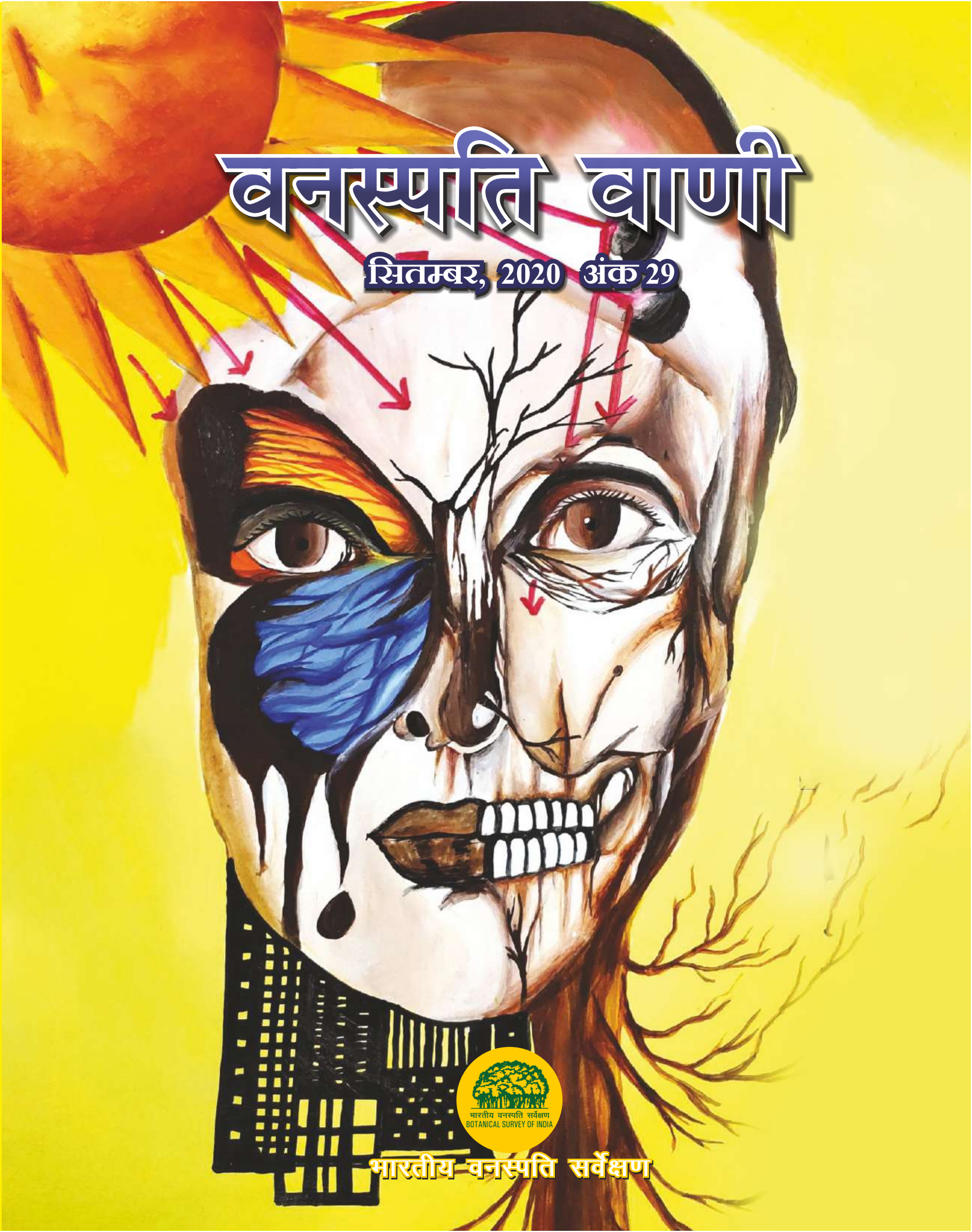

भारतीय वनस्पति सर्वेक्षण
BOTANICAL SURVEY OF INDIA

भारतीय वनस्पति सर्वेक्षण

श्री बाबुल सुप्रियो माननीय राज्य मंत्री पर्यावरण, वन एवं जलवायु परिवर्तन, भारतीय वनस्पति सर्वेक्षण द्वारा प्रकाशित 'वनस्पति अन्वेषण' (प्लान्ट डिस्कवरीज - 2019) का विमोचन करते हुये, मंच पर उपस्थित डॉ. कैलाश चंद्रा, निदेशक, भारतीय प्राणि सर्वेक्षण तथा डॉ. ए. ए. माओ, निदेशक, भारतीय वनस्पति सर्वेक्षण। ए. जे. सी. बोस भारतीय वानस्पतिक उद्यान

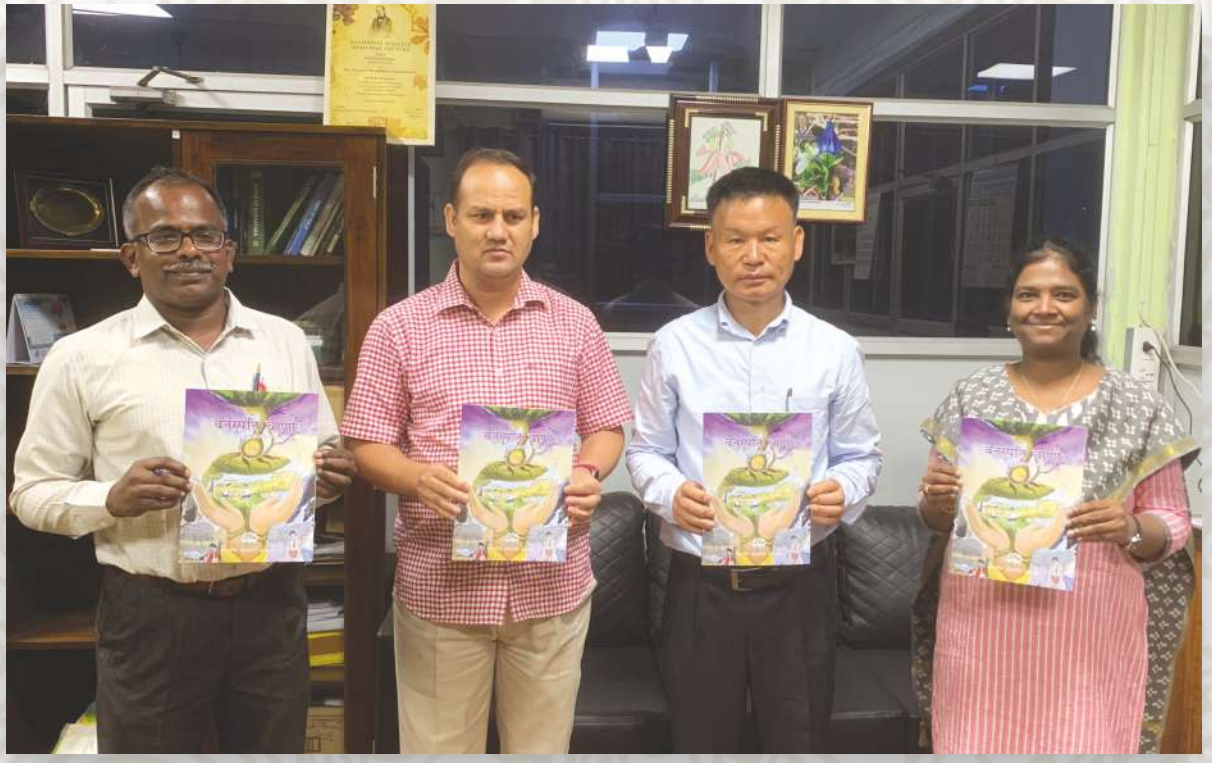

भारतीय वनस्पति सर्वेक्षण (मुख्यालय), कोलकाता में वनस्पति वाणी 2019, अंक 28 का विमोचन करते हुए निदेशक, डॉ. ए.ए. माओ, डॉ. सी. मुरुगन, वैज्ञानिक - ई, डॉ. जे जयन्थी, वैज्ञानिक - ई एवं डॉ. जीवन सिंह जलाल, वैज्ञानिक - ई।

संयुक्त राष्ट्रसंघ जैव विविधता दशक

वनस्पति वाणी

सितम्बर 2020 अंक 29

पश्यैतान् महाभागान् पराबैंकान्तजीवितान्।
वातवर्षातपाहिमान् सहन्तरे वारयन्ति नः।।

(भावार्थ: वृक्ष इतने महान होते हैं कि परोपकार के लिए ही जीते हैं।
ये आँधी, वर्षा और शीत को स्वयं सहन करते हैं।)

– (महाभारत, अनुशासन पर्व, अध्याय, 58, श्लोक 32)

भारतीय वनस्पति सर्वेक्षण
BOTANICAL SURVEY OF INDIA

भारतीय वनस्पति सर्वेक्षण

©भारतीय वनस्पति सर्वेक्षण, 2020

इस प्रकाशन का कोई भी अंश निदेशक, भारतीय वनस्पति सर्वेक्षण की लिखित पूर्वानुमति के बिना पुनर्प्रवर्तित/ रिट्रिवल पद्धति में भण्डारण या इलैक्ट्रॉनिक, मैकेनिकल फोटोकापी, रिकार्डिंग या अन्य किसी तरीके से ट्रांसमिट नहीं किया जा सकता है।

संरक्षण एवं प्रधान सम्पादक
ए.ए. माओ

सम्पादक मण्डल
एस. एस. दास
दिनेश कुमार अग्रवाला
जीवन सिंह जलाल
कैलाश प्रसाद कुशवाहा

डिजाइन
अंचल विश्वास

ISSN : 09758-4342

निदेशक, भारतीय वनस्पति सर्वेक्षण, सी. जी. ओ. कॉम्पलेक्स, तृतीय एम.एस.ओ. भवन,एफ विंग, डी एफ ब्लॉक, सेक्टर -1, साल्ट लेक सिटी कोलकाता -7000 064 द्वारा प्रकाशित एवं सीमाफोर टेक्नलॉजीस प्रा. लि., 3 गोकुल बड़ाल स्ट्रीट, कोलकाता द्वारा मुद्रित।

- वनस्पति वाणी में प्रकाशित रचनाओं की मौलिकता, प्रमाणिकता एवं व्यक्त विचारों के लिये लेखक स्वयं उत्तरदायी हैं।
- इस अंक के प्रूफ संशोधन, मुद्रण क्रम में राजभाषा हिन्दी एवं प्रकाशन अनुभाग के सभी कर्मचारियों ने सक्रिय सहयोग दिया है।

ग्रीन गुड डीड

भारत के पर्यावरण, वन एवं जलवायु परिवर्तन मंत्रालय द्वारा संचालित 'ग्रीन गुड डीड' अभियान की कुछ चुनिन्दा बातों को हम वनस्पति वाणी के इस अंक में इस उद्देश्य के साथ प्रस्तुत कर रहे हैं कि, हम सभी इनसे प्रेरित होकर अपने जीवन में इनको क्रियान्वित करें। ये छोटी छोटी बातें पर्यावरण को बहुत बड़ा लाभ देने में सक्षम हैं।

पक्षियों के लिए दाना-पानी रखें।

अपने घर में सब्जी का बगीचा या किचन गार्डन लगाएं।

अपने पौधों के लिए कम्पोस्ट खाद का प्रयोग करें।

पौधों को उपहार में भेट दें।

सूखी पत्तियों को न जलाएं, उलसे कम्पोस्ट निर्माण करें।

कीटनाशकों का उपयोग न करें।

अपने घर की सजावट के लिए फूलों तथा मिट्टी के दीयों का प्रयोग करें।

पूजा सामग्री को तालाब और नदियों में न डालें।

आवरण चित्र

अक्षिता छाबड़ा
गुडली पब्लिक स्कूल
नई दिल्ली

पार्श्व चित्र

आस्था पटनायक
समर फील्ड्स स्कूल
नई दिल्ली

अनुक्रमणिका

वनस्पति विविधता

1.	जैव-विविधता एवं बायोस्फियर रिजर्व	वी.के.रावत, ए. बेनियामिन, अच्युत नंद शुक्ला एवं एस एस दास	1
2.	पादप वर्गीकरण और पर्यावरण संरक्षण तथ्य	वी. के. रावत, अच्युत नंद शुक्ला, ओ. एन. मौर्य एवं दिनेश कुमार अग्रवाला	8
3.	पुष्पकृषि एवं वाणिज्यिक क्षमता युक्त ऑर्किड जातियों का भारतीय वनस्पति सर्वेक्षण, पूर्वी क्षेत्रीय केंद्र,शिलांग, मेघालय में बाह्य स्थल संरक्षण	छाया देवरी, डेविड एल. बियाटे एवं एन. ओडियुओ	20
4.	एक कदम अंडमान तथा निकोबार द्वीप समूह के संकटग्रस्त पौधों की संरक्षण की ओर	रेशमा लकड़ा एवं पुष्पा कुमारी	24
5.	औषधीय आकाश बेली परजीवी की दो नई जातिऑ	लाल जी सिंह, गौतम अनुज एक्का सी.पी. विवेक एवं विष्णु चरन दे	26
6.	बिलिगिरी रंगास्वामी मंदिर (बीआरटी) वन्यजीव अभयारण्य की जैव विविधता	जे. जयंथी और जीवन सिंह जलाल	28
7.	पौधों में खनिज पोषण तत्व एवं उनके कमी के लक्षण	अमित कुमार सिंह एवं ओंकार नाथ मौर्य	33

अपुष्पीय वनस्पति

8.	कर्नाटक तट की समुद्री शैवाल विविधता : एक अवलोकन	एस. के. यादव, एवं एम. पलनीसामी	37

लोक वनस्पति विज्ञान

9.	मेघालय की ग्रामीण जनजातियों से प्राप्त कुछ अल्पज्ञात खाद्य, औषधीय और अन्य उपयोगी पौधों का विवरण	कांगकन पगाग, सुरेंद्र कुमार शर्मा एवं ए. के. साहू	41
10.	उत्तराखंड के थारू व भोक्सा जनजातियों द्वारा प्रयुक्त वनस्पतियों एवं उनके उपयोग से संबंधित पारंपरिक ज्ञान में निरंतर कमी का एक अध्ययन	हरीश सिंह	44
11.	बिहार में झाड़ू बनाने में उपयोग होने वाले कुछ प्रमुख पौधे	मोनिका मिश्र, पंकज ढोले, हरीश *सिंह* एंव के अल्ताफ अहमद कबीर	47
12.	होली के रंग फूलों के संग	देबस्मिता दत्ता प्रमाणिक	51

व्यक्तित्व

13.	शैवाल अनुसंधान के क्षेत्र में प्रो. पी. सी. सिल्वा (1922-2014) का योगदान	सुधीर कुमार यादव	56

काव्यांजली

13.	कुदरत का कहर	आर. के. गुप्ता	58
14.	बहुत किया खिलवाड़ धरा से	सौरभ सचान, वनस्पति सहायक	59

पटाक्षेप

15.	विविध जानकारियां	कैलाश प्रसाद कुशवाहा	60
16.	राजभाषा प्रोत्साहन योजनाएं	राजभाषा अनुभाग	62
17.	लेखकों के लिए निर्देश	राजभाषा अनुभाग / प्रकाशन अनुभाग	65
18.	राजभाषा हिंदी से संबंधित विविध जानकारियां	राजभाषा अनुभाग	66
19.	गतिविधियां (सचित्र)	प्रकाशन अनुभाग	68

जैव-विविधता एवं बायोस्फियर रिजर्व

वी.के.रावत[1], ए. बेनियामिन[2], अच्युत नंद शुक्ला[3] एवं एस एस दास[3]

[1]भारतीय वनस्पति सर्वेक्षण, ईटानगर
[2]भारतीय वनस्पति सर्वेक्षण, पुणे
[3]भारतीय वनस्पति सर्वेक्षण, कोलकाता

वर्ष 2010 को संयुक्त राष्ट्र संघ द्वारा अन्तर्राष्ट्रीय जैव विविधता वर्ष घोषित किया। इसी प्रकार वर्ष 2012 को सामुद्रिक जैवविविधिता का संरक्षण वर्ष घोषित किया है। दुनियां के 12 जैव विविधता सम्पन्न राष्ट्रों (विश्व की 60 प्रतिशत से अधिक जैव विविधता इन देशों मे समाहित हैं) में भारत का भी स्थान है अतः जैव विविधता का महत्व एवं संरक्षण हमारे लिए अति आवश्यक विषय है। इसलिए जैव विविधता का महत्व और बढ़ जाता है। किसी प्राकृतिक प्रदेश में पायी जाने वाली जंगली तथा पालतू जीव-जन्तुओं एवं पादपों की जातियों की बहुलता को जैव-विविधता कहते हैं। अतीत के करोड़ों वर्षो के दौरान अनवरत सक्रिय रहने वाली विकास की जैविक प्रक्रिया की देन जैव-विविधता है। जैव विविधता जीवन का आधार है एवं यही पर्यावरण में समय के साथ धीरे एवं तेजी से होने वाले परिवर्तनों के विरूद्ध लड़ने के लिये जैविक पदार्थ उपलब्ध कराने में सक्षम होती है। उष्ण कटिबंधीय वन इस कथन के मुख्य उदाहरण है। जैव विविधता शब्द का सर्वप्रथम प्रयोग प्रसिद्ध कीट वैज्ञानिक विल्सन ने 1986 में जैविक विविधता पर अमेरिकन फोरम के लिये प्रस्तुत प्रतिवेदन में किया। तभी से यह शब्द एक संकल्पना के रूप में जैव वैज्ञानिकों, पर्यावरणविदों, राजनीतिज्ञों आदि द्वारा विस्तृत रूप से अपनाया गया। जैव-विविधता के तीन महत्वपूर्ण स्तर हैं - आनुवांशिक विविधता, प्रजाति विविधता एवं पारिस्थितिकी विविधता। आनुवांशिक विविधताः- किसी भी लक्षण में उपस्थित विविधता का वह भाग जो कि आनुवांशिक कारणों से उत्पन्न होता है। आनुवांशिक विविधता कहलाती है। जिसका जैव विविधता के संरक्षण में महत्वपूर्ण योगदान है। प्रजातीय विविधताः- जीवित प्राणियों में विविधता विद्यमान है जिसे प्रजाति विविधता कहा जाता है। भू-तल पर प्रजाति विविधता समान नहीं है। कुछ क्षेत्रों में विविधता अधिक तथा कुछ में कम है। भूमध्य रेखीय प्रदेश में प्रजाति विविधता अन्य भोगौलिक प्रदेशों की अपेक्षा अधिक है। भारत का मानसूनी प्रदेश प्रजाति विविधता की दृष्टि से समृद्ध है। बर्फाच्छादित तथा मरू प्रदेश जैव-विविधता की दृष्टि से अत्यन्त निर्बल है। पारिस्थितिकी विविधताः-प्राकृतिक वास, पारिस्थतिकी प्रणाली के प्रकार, प्रक्रियाओं के मध्य अन्तर आदि को पारिस्थिकी विविधता के अन्तर्गत सम्मिलित किया जाता है। प्रत्येक पारिस्थिकी प्रणाली में ऊर्जा प्रवाह एवं जल चक्र की पृथक-पृथक पद्धतियों होती है। फलस्वरूप विभिन्न क्षेत्र में भिन्न-भिन्न जैव विविधता उत्पन्न होती है।

भूमण्डलीय जैव-विविधताः-एक अनुमान के अनुसार पृथ्वी पर जीवन की उत्पत्ति के बाद से जन्तु, वनस्पतियों व अन्य सूक्ष्म जीवों की लगभग 500 मिलियन जातियॉ विकसित हो चुकी है। वैज्ञानिकों के अनुसार विश्व में लगभग 10-40 मिलियन जातियॉ जीवित है, जिसमें से केवल 1.4 मिलियन जातियॉ ही अभी तक चिन्हित व नामित हो पायी है। भारत का भोगौलिक क्षेत्र 32 मिलियन हेक्टेयर है, अपने विस्तृत अक्षांशीय फैलाव, तापमान, ऊँचाई व जलवायु की भिन्नता के कारण विश्व के 12 महाजैव विविधता वाले देशों (ब्राजील, कोलंबिया, इक्वाडोर, मेक्सिको, पेरू, भारत, मेडागास्कर, जायरे, चीन, इण्डोनेशिया, मलेशिया व आस्ट्रेलिया) की श्रेणी में आता है इन्हीं देशों में विश्व की जैव विविधता का 60-70 प्रतिशत अंश विद्यमान है। इन देशों में आस्ट्रेलिया ही अकेला विकसित राष्ट्र है तथा अन्य 11 देश विकासशील देशों की श्रेणी में आते हैं। जहॉ पर आर्थिक विकास हेतु वन्य भू-भॉगों, वनों एवं अन्य प्राकृतिक संसाधमों पर अत्यधिक दबाव है इसी कारणवश पर्यावरणीय व पारिस्थतिकीय प्राथमिकतायें इस विकास मात्रा में तुलनात्मक रूप से पिछड़ जाती है। भारत विश्व का केवल 2.4 प्रतिशत क्षेत्रफल का वरण करते हुये भी विश्व जैव विविधता का 8-11 प्रतिशत अंश को समाहित करता है। मेयर (1990) में स्थानीय स्तर पर जातियों के अपवादात्मक संकेन्द्रण की प्रमुखता के आधार पर विश्व भर में 12 हाटस्पाट को चिन्हित किया है, तथा इनमें 2 हाटस्पाट पूर्वी हिमालय व पश्चिमी घाट भारत में स्थित है। वर्तमान में यह संख्या बढ़कर 25 तक पहुंच गयी है, यही हाटस्पाट क्षेत्र विश्व की अधिकांश फसलों

का उद्गम क्षेत्र भी है।जैव विविधता को विश्व स्तर पर निम्न क्षेत्रों में विभाजित किया जा सकता है।

अत्यधिक जैव विविधता वाले क्षेत्र में उष्ण कटिबंध के स्थलीय एवं जलीय भाग, प्रवाल भित्ति क्षेत्र तथा आर्द्र भूमि जैव-विविधता की दृष्टि से अत्यन्त समृद्धशाली है। उष्ण कटिबन्धीय वर्षा वन जैव विविधता की दृष्टि से सबसे समृद्ध होते हैं। इसे जैव विविधता का भण्डार कहा जाता है। यह विश्व के 13 प्रतिशत भू-भाग पर फैले हुये हैं एवं संसार की 50 प्रतिशत से अधिक जातियां इन वनों में विद्यमान है। प्रवाल भित्तियॉ भी इसी श्रेणी में आती हैं। इन्हें समुद्रों के वर्षा वन कहा जाता है। विश्व की सबसे बड़ी प्रवाल भित्ति आस्ट्रेलिया में है। पूर्वी हिन्द महासागर तथा पश्चिमी प्रशान्त महासागर का संक्रमणं क्षेत्र की प्रवाल भित्तियों से समृद्ध है। वर्तमान समय में लगभग 109 देशों में प्रवाल भित्तियॉ पायी जाती हैं, लेकिन आज 93 देशों की प्रवाल भित्तियॉ नष्ट हो चुकी हैं। आर्द्र भूमि भी जैव विविधता की दृष्टि से समृद्ध हैं। सुन्दर वन विश्व का सबसे बड़ा मैंग्रोव है, जिसमें सुन्दरी वृक्षो की अधिकता है। अधिक जैव विविधता वाला क्षेत्रों में इन पश्चिमी यूरोप, मानसूनी प्रदेश एवं घॉस के मैदान जैसे प्रेयरी, स्टेपी, पम्पास, वेल्ड, डाउन्स आदि प्रमुख हैं। उत्तरी अटलांटिक महासागर का सारगेसन नामक विशेष प्रजाति की समुद्री घास के लिये प्रसिद्ध है। मानसूनी प्रदेश में भारी वर्षा एवं छोटी शुष्क शीत ऋतु होती है। भारत के मालाबार तट एवं असम के अधिक वर्षो वाले क्षेत्र संघन जंगल है।कम जैव विविधत वाला क्षेत्रों में उपर्धुर्वीय एवं मरूस्थलीय क्षेत्र प्रमुख हैं। निम्न जैव विविधता वाला क्षेत्रों में उत्तरी तथा दक्षिणी धुरव इनके महत्वपूर्ण उदाहरण है। भारतीय जैव विविधता- प्राकृतिक वासों की विविधता से जीव-जन्तुओं एवं प्राणियों में विविधता उत्पन्न हुई है। भारत की जैव विविधता को चार भागों में विभाजित किया जा सकता है। मलायन जैव विविधताः- पूर्वी हिमालय की घाटियॉ, इथोपियन जैव विविधताः- राजस्थान एवं उसके आस-पास का शुष्क वातावरण वाला क्षेत्र। यूरोपियन जैव विविधता, उच्च हिमालीय क्षेत्र, भारतीय जैव विविधता- प्रायद्वीप पठार इसके महत्वपूर्ण उदाहरण हैं।

भारत के सघन वन जैव विविधता की दृष्टि से संसार में अपना विशिष्ट स्थान रखते हैं। ब्राजील के पश्चात भारत के सघन वनों में सर्वाधिक जैव विविधता है। संसार के समस्त ज्ञात जीवों का 7.5 प्रतिशत भाग यहॉ निवास करता है।जैव विविधता परितंत्र में अपना विशेष योगदान देती हैं। विविधता पूर्ण जैविक समुदाय अपनी स्थिरिता को आसानी से कायम रखता है। जबकि कम जातियों वाला पारिस्थतिकी तंत्र स्थितर होता हैं। जैव विविधता आर्थिक दृष्टि से महत्वपूर्ण है। पर्यावरण के अस्तित्व के लिये जैव विविधता का सुरक्षित रखना नितान्त आवश्यक है। किसी एक जाति के नष्ट हो जाने से सम्पूर्ण परिस्थितिकी तंत्र अस्थिर हो जाता है। जैव विविधता के ह्रास के कारणों में मुख्य है आवासों का विनाश- एशिया के उष्ण कटिबन्धीय देशों में 65 प्रतिशत वन्य जीवों के आवास नष्ट कर दिये गये हैं। जिनमें बंग्लादेश 97 प्रतिशत, हॉगकॉग 95 प्रतिशत, श्रीलंका-85 प्रतिशत एवं वियतनाम 80 प्रतिशत प्रमुख हैं। आवासों का भिखराव के कारण भी जैव विविधता में कम आने लगी है। वन्य जीवों का अवैध शिकार भी एक मुख्य कारण हैं। साथ ही प्रदूषण, बाहरी प्रजातियों का प्रवेश एवं स्थानान्तरीय कृषि के कारण जैव विविधता का ह्रास हुआ हैं ऐसे स्थान पर जहॉ पर जातियों की पर्याप्तता तथा स्थानीय जातियों की अधिकता पायी जाती है। लेकिन साथ ही इन जीव जातियों के अस्तित्व पर निरन्तर संकट बना हुआ है। अर्थात जहॉ स्थानीय एवं वैश्विक दृष्टि से जातियों की समृद्धता है। लेकिन आवास विनाश का संकट बना हुआ है। ऐसे स्थलों का संवेदनशील क्षेत्र कहते हैं इस शब्द का प्रयोग सबसे पहले नार्मन मेयर्स ने 1988 में किया था। विश्व में अब तक 36 हॉट स्पॉट्स की पहचान की गयी है जिसमें से चार पश्चिमी घाट एवं पूर्वी हिमालय भारत में स्थित है।

एक अनुमान के अनुसार पृथ्वी पर जीवन की उत्पत्ति के बाद से जन्तु, वनस्पतियों व अन्य सूक्ष्म जीवों की लगभग 500 मिलियन प्रजातियॉ विकसित हो चुकी है। भारत विश्व का केवल 2.4 प्रतिशत क्षेत्रफल का वरण करते हुये भी विश्व जैव विविधता का 8-11 प्रतिशत अंश को समाहित करता है। बायोस्फियर रिजर्व ऐसे स्थल एवं/ अथवा समुद्र तटीय संरक्षित क्षेत्र हैं, जिनमें मनुष्य सम्पूर्ण तंत्र का एक अभिन्न हिस्सा होता है। भारत मे 96 राष्ट्रीय उद्यानों, 510 वन्य-जीव अभयारण्यों, 28 टाइगर रिजर्व एवं 25 एलीफैन्ट (हाथी) रिजर्व के रूप में संरक्षित क्षेत्रों का तंत्र तैयार किया गया है।इन संरक्षित क्षेत्रों मे, देश के कुल भौगोलिक क्षेत्र का 55 प्रतिशत सम्मलित है। भारत में समृद्ध जैवविविधता के कारण सांस्कृतिक एवं जातीय विविधता का प्रादुर्भाव हुआ है, जिसमें 227 जातीय समूहों के 550 से ज्यादा जनजातीय समुदाय 5000 से ज्यादा वन ग्रामों मे फैले हैं।

नर्मदा मन्दिर

गोंड आदिवासी

कपिलधारा

राष्ट्रीय बायोस्फियर रिजर्व कार्यक्रम की शुरूआत वर्ष 1986 में की गई। यूनेस्को के मानव व जैवमण्डल कार्यक्रम के अन्तर्गत जैवमंडल आरक्षित (बायोस्फियर रिजर्व) क्षेत्र पर विचार 1974 में शुरू किया गया, जिसका मुख्य उद्देश्य प्राकृतिक रूप से सम्पन्न पारिस्थितिकीय तंत्रों का प्रतिनिधित्व करने वाले क्षेत्रो का उनके वास्तविक रूप मे संरक्षण करना है। अंर्तराष्ट्रीय परिप्रेक्ष्य में यह कार्यक्रम इन क्षेत्रों में रहने वाले जनसमुदायों को पारिस्थितिकीय तंत्र का मूलभूत हिस्सा मानती है, जो पौराणिक काल से प्रकृति के साथ सामन्जस्य रह रहे हैं। इस योजना में इन समुदायों के सामाजिक आर्थिक विकास के द्वारा वहां की पारिस्थितिकीय तंत्रो के संरक्षण को बढ़ावा देना है। जैवमंडल आरक्षित क्षेत्र कार्यक्रम सम्पूर्ण मानव जाति के लाभ के लिए जैव विविधता एवं पारिस्थितिकीय तंत्रों के संरक्षण को बढ़ावा देता है।

भारत वर्ष में सम्मलित हैं पाँच बायोम्स 1. उष्ण कटिबंधीय आर्द्र वन, 2. उष्णकटिबंधीय शुष्क या पर्णपाती वन (मानसून वनों सहित), 3. गर्म रेगिस्तान एवं अर्ध रेगिस्तान, 4. शंकुधारी वन एवं 5. अल्पाइन मीडो, दस जैव-भौगोलिक क्षेत्र: 1. ट्रांस हिमाालयन, 2. हिमालयन, 3. भारतीय रेगिस्तान, 4. अर्ध शुष्क, 5. पश्चिमी घाट, 6. दक्षिणी प्रायद्वीप, 7. गंगा का मैदान, 8. उत्तर पूर्वी भारत, 9. द्वीप समूह 10. समुद्र तट एवं छब्बीस जैव-भौगोलिक प्रक्षेत्र : 1. ट्रांस हिमालय- लद्दाख माउन्टेन्स 2. ट्रांस हिमालय- तिब्बत पठार 3. उत्तर -पश्चिम हिमालय 4. पश्चिम हिमालय 5. मध्य हिमालय 6. पूर्वी हिमालय 7. मरूस्थल - धार 8. मरूस्थल-कच्छ 9. अर्ध शुष्क- पंजाब का मैदान 10. अर्ध शुष्क- गुजरात राजपूताना 11. पश्चिमी घाट - मालाबार का मैदान 12. पश्चिमी घाट 13. डेक्कन पेनिनसुला - मध्य हाइलैण्ड 14. डेक्कन पेनिनसुला - छोटा नागपुर 15. डेक्कन पेनिनसुला - पूर्वी हाइलैण्ड 16. डेक्कन पेनिनसुला - मध्य पठार 17. डेक्कन पेनिनसुला 18. ऊपरी गंगा का मैदान 19. निचला गंगा का मैदान 20. तट - पश्चिमी तट 21. पूर्वी तट 22. तट - लक्ष्यद्वीप 23. ब्रहमपुत्र वैली 24. उत्तर पूर्व

पहाड़ियाँ 25. अंडमानद्वीप 26. निकोबार द्वीपा।दो रियाल्म्स हिमालयी भाग जिसका प्रतिनिधित्व पैलेयाक्टिक रियाल्म्स करता है एवं शेष भाग, जिसका प्रतिनिधित्व मलायन रियाल्म्स करता है।इस पारिस्थितिकीय विभिन्नता के कारण ही भारत वर्ष को विश्व के मानचित्र पर कुल महाविविधिता मे से एक महाविविधिता क्षेत्र निरूपित किया गया है।

बायोस्फियर रिजर्व की विशेषताएँ

बायोस्फियर रिजर्व ऐसे स्थल एवं/ अथवा समुद्र तटीय संरक्षित क्षेत्र हैं, जिनमें मनुष्य सम्पूर्ण तंत्र का एक अभिन्न हिस्सा होता है। कुल मिलाकर वह विश्वव्यापी नेटवर्क का गठन करते हैं, जो वैज्ञानिक सूचनाओं के आदान-प्रदन के लिए अर्न्तराष्ट्रीय स्तर पर जुड़े रहते हैं।बायोस्फियर रिजर्व प्राकृतिक बायोम्स का प्रतिनिधित्व करने वाले क्षेत्र होते हैं।बायोस्फियर रिजर्व जैवविविधता के अदभुत समुदायों का या अपवाद स्वरूप असामान्य प्राकृतिक विशिष्टता वाले क्षेत्रों का संरक्षण करते हैं। यह मान कर चलते हैं कि इन प्रतिनिधित्व वाले क्षेत्रों में प्राकृतिक भू-दृश्यों, पारिस्थितिकीय तंत्रों एवं आनुवांशिक विविधता के अद्वितीय लक्षण भी मौजूद हो सकते हैं। उदाहरण के लिए वैश्विक दुर्लभ प्रजातियों की एक जनसंख्या, उनके प्रतिनिधित्व एवं अद्वितीयता वाले क्षेत्रों या दोनों ही विशेषतायों हो सकती हैं।

सामान्यतः बायोस्फियर रिजर्व क्षेत्र में एक कोर (केन्द्रीय) क्षेत्र होता है, जिसमें कम से कम छेड़छाड़ किया गया हो एवं जो ऐसे क्षेत्रों के साथ सम्मिलित है, जिसमें आधारभूत मापन, प्रयोगात्मक और व्यावहारिक शोध, शिक्षा और प्रशिक्षण के कार्यक्रम कार्यान्वित होते रहते हैं। जहाँ पर ऐसे क्षेत्र एक साथ नही जुड़े रहते हैं, तो कई इस तरह के समूहों को जोड़ कर सम्मिलित किये जा सकते हैं।

बायोस्फियर रिजर्व के स्थल के चयन के लिए निर्धारित मापदंड निम्नांकित हैं:-

प्राथमिक मापदंड

ऐसा स्थल, जो प्रभावशाली ढंग से संरक्षित है एवं न्यूनतम बाधित केन्द्रीय क्षेत्र, जो प्रकृति के संरक्षण हेतु धरोहर के रूप में जाना जाता हो तथा प्राकृतिक संरक्षण हेतु शोध एवं प्रबंधन के स्वपोषी तरीके के प्रदर्शन एवं अनुसंधान के लिए अतिरिक्त भूमि और जल उपलब्ध हो।

केन्द्रीय (कोर) क्षेत्र एक विशिष्ट जैव-भौगोलिक इकाई के रूप में हो एवं पर्याप्त विस्तृत क्षेत्र हो, जिससे कि पारिस्थितिकी तंत्र में समस्त अनुवर्ती स्तरों का प्रतिनिधित्व करने वाली जीवनक्षम जनसंख्या का पोषण हो सके।

द्वितीयक मापदंड

वे स्थल, जहॉ दुर्लभ या संकटापन्न प्रजातियां पायी जाती हो।

वे स्थल, जहॉ मृदा में विभिन्नता एवं सूक्ष्म वातावरणीय स्थितियों में विविधता हो, तथा जहॉ बायोटा की देशी किस्में हो।

ऐसे संम्भावित स्थल, जहॉ पर्यावरण के मैत्रीपूर्ण उपयोग के लिए रहन-सहन की ग्रामीण पद्धति या पारंपरिक जनजाति के संरक्षण की संभावना हो।

बायोस्फियर रिजर्व की संरचना व परिकल्पना

जैव-विविधता संरक्षण एवं प्रबन्धन विकास के संचालन के तारतम्य में बायोस्फियर रिजर्व को 3 अंर्त-समबद्ध क्षेत्रों में बॉटा गया है। ये हैं:-

कोर जोन (केन्द्रीय क्षेत्र) केन्द्रीय क्षेत्र प्रायः आर्थिक प्रजातियों के वन्य संबंधियों का संरक्षण करते हैं एवं महत्वपूर्ण अनुवांशिक भंडारों को निरूपित करते हैं। कोर क्षेत्र को बाहर के समस्त मानवीय दबावों से मुक्त रखा जाना चाहिए।कोर क्षेत्र को पूरी तरह बाधा रहित रखा जाता है। इसमें उच्च वर्ग के परभक्षियों सहित विभिन्न पादप एवं प्राणी प्रजातियों के लिए उपयुक्त निवास स्थान होना चाहिए एवं इनमें स्थानिक केन्द्र भी सम्मलित हो सकते हैं।

बफर जोन (मध्यवर्ती क्षेत्र) इस क्षेत्र में उपयोग एवं गतिविधियों में पुनर्रचना, संसाधनों के महत्व को बढ़ाने के लिए स्थल प्रदर्शन,

सीमित मनोरंजन, पर्यटन, मत्स्य पालन एवं चराई की अनुमति दी गई है, सम्मिलित है, जिससे केन्द्रीय क्षेत्र पर इसका प्रभाव कम हो सके। इसमें शोध एवं शिक्षण गतिविधियों को प्रोत्साहित किया जाता है।मध्यवर्ती क्षेत्र, जो केन्द्रीय क्षेत्र से जुड़ा अथवा चारों तरफ रहता है, में उपयोग व गतिविधियॉ इस प्रकार संचालित की जाती है, जिससे केन्द्रीय क्षेत्र को सुरक्षित रखा जा सके।

ट्रान्जिसन जोन (परिवर्तनीय क्षेत्र) इसमें आवास, कृषि भूमि, व्यवस्थित वन एवं गहन मनोरंजन के लिए एवं आर्थिक उपयोग की क्षेत्रीय विशेषताएँ शामिल रहती हैं।परिवर्तनीय क्षेत्र बायोस्फियर रिजर्व का सबसे बाहरी हिस्सा होता है। सामान्यतः इसकी सीमा निधारित नहीं की जाती एवं यह ऐसा सहयोगी क्षेत्र होता है, जहॉ संरक्षण ज्ञान एवं प्रबंधन कौशल के प्रयास किये जाते हैं,

बायोस्फियर रिजर्व वन्य-जीव अभयारण्यों व राष्ट्रीय उद्यानों से अलग कैसे हैं ?

बायोस्फियर रिजर्व के विभिन्न घटको-जैसे भू-दृश्यों, प्राकृतिक रहवासों एवं प्रजातियों एवं भू-वंशों के संरक्षण पर जोर दिया जाता।इसमें समग्र विकासात्मक गतिविधियों पर ध्यान दिया जाता है एवं विकास व संरक्षण के बीच उत्पन्न होने वाले विवादों का समाधान किया जाता है।राष्ट्रीय उद्यानों एवं वन्य अभयारण्यों कार्यक्रम की तुलना में इसमें सहभागी संस्थाओं के वृहद रूप, विशेष कर स्थानीय लोगों के भागीदारी में वृद्धि एवं उनके प्रशिक्षण पर जोर दिया जाता इसमें पारिस्थितिकीय तंत्र के संरचना तथा कार्य प्रणाली को समझने तथा मानवीय हस्तक्षेप के कारण होने वाले प्रतिक्रियाओं को जानने के लिए शोध एवं पर्यवेक्षण को बढ़ावा देना।

बायोस्फियर रिजर्व कैसे घोषित किये जाते है ?

बायोस्फियर रिजर्व के प्रबन्धन की जिम्मेदारी सम्बन्धित राज्य सरकारों/ संघ राज्यों की होती है, जिसमें केन्द्र शासन द्वारा आवश्यक तकनीकी सहायता एवं प्रशिक्षण की सुविधा मुहैया कराई जाती है।

बायोस्फियर रिजर्व को नामित करने के लिए केन्द्र/ राज्य सरकारों की पहल निर्धारित मापदण्ड के अनुरूप एक विस्तृत अध्ययन किया जाता है तथा सम्बन्धित राज्य सरकार द्वारा परियोजना प्रतिवेदन तैयार किया जाता है। चिन्हित स्थलों को बायोस्फियर रिजर्व घोषित करने के पहले सम्बन्धित राज्य सरकारों की सहमति होना आवश्यक है। केन्द्र शासन द्वारा इन बायोस्फियर रिजर्व के प्रबन्धन एवं शोध गतिविधियों हेतु आवश्यक राशि अनुदान के रूप से मुहैया कराई जाती है।

भारत में 18 बायोस्फीयर रिजर्व हैं

शीत मरुस्थल (हिमाचल प्रदेश); नंदा देवी (उत्तराखंड); खांगचेंदज़ोंगा (सिक्किम); देहांग-देबांग (अरुणाचल प्रदेश); मानस (असम); डिब्रू-सैखोवा (असम); नोकरेक (मेघालय); पन्ना (मध्य प्रदेश); पचमढ़ी (मध्य प्रदेश); अचानकमार-अमरकंटक (मध्य प्रदेश); कच्छ (गुजरात); सिमिलिपाल (उड़ीसा); सुंदरबन (पश्चिम बंगाल); शेषचलम (आंध्र प्रदेश); अगस्त्यमाला (कर्नाटक-तमिलनाडु-केरल); नीलगिरि (तमिलनाडु-केरल); मन्नार की खाड़ी (तमिलनाडु) एवं ग्रेट निकोबार (अंडमान और निकोबार द्वीप समूह)।

बायोस्फीयर रिजर्व की अंतर्राष्ट्रीय स्थिति

यूनेस्को ने विकास और संरक्षण के बीच संघर्ष को कम करने के लिए प्राकृतिक क्षेत्रों के लिए 'बायोस्फीयर रिजर्व' की शुरुआत की है। बायोस्फीयर रिजर्व को राष्ट्रीय सरकार द्वारा नामित किया जाता है जो यूनेस्को के मैन एंड बायोस्फीयर रिजर्व प्रोग्राम के तहत न्यूनतम मानदंडों को पूरा करता है। विश्व स्तर पर, 122 देशों में 686 बायोस्फीयर रिजर्व हैं, जिनमें 20 ट्रांसबाउंड्री साइट शामिल हैं।

अचानकमार-अमरकंटक बायोस्फियर रिजर्व

अचानकमार - अमरकंटक क्षेत्र मध्यप्रदेश एवं छत्तीसगढ़ राज्य के बीच एक अन्तर्राज्यीय बायोस्फियर रिजर्व है। सम्पूर्ण बायोस्फियर रिजर्व क्षेत्र में मध्य प्रदेश राज्य के दो जिले अनुपपूर एवं डिंडोरी तथा छत्तीसगढ़ राज्य के बिलासपुर जिलें आते हैं। इस बायोस्फियर रिजर्व का 1224.98 वर्ग किमी (31.90 प्रतिशत) क्षेत्र मध्यप्रदेश में एवं शेष 2610.53 वर्ग किमी (68.10 प्रतिशत) क्षेत्र छत्तीसगढ़ राज्य में समाहित हैं। कुल क्षेत्रफल का 16.20 प्रतिशत अनूपपुर में, 15.70 प्रतिशत डिंडोरी में एवं 68.10 प्रतिशत बिलासपुर में

आता है। इसके अन्तर्गत अचानकमार अभयारण्य, नामक संरक्षित क्षेत्र, (केन्द्रीय क्षेत्र बिलासपुर जिले में स्थित है। इसका कुल क्षेत्रफल 551.15 वर्ग किमी है, इस केन्द्रीय क्षेत्र का सम्पूर्ण भाग छत्तीसगढ़ राज्य में पड़ता है। परिचालन या मध्यवर्ती क्षेत्र में बायोस्फियर रिजर्व के कुल क्षेत्रफल का 3284.36 वर्ग किमी आता हैं। इसमे से 1224.98 वर्ग किमी क्षेत्र मध्यप्रदेश में एवं शेष 2059.38 वर्ग किमी क्षेत्र छत्तीसगढ़ राज्य के अन्तर्गत आता है।

वनस्पति

अचानकमार-अमरकंटक बायोस्फियर रिजर्व, विशेषकर अमरकंटक पठार एवं अचानकमार घाटी, बहुत सी दुलर्भ प्रजातियों एवं औषधीय रूप से महत्पूर्ण प्रजातियों का निवास स्थल हैं।अचानकमार-अमरकंटक बायोस्फियर रिजर्व में सामान्यतः उष्णकटिबंधीय पर्णपाती वनस्पतियाँ पाई जाती हैं, जिन्हें दो हिस्सों -उत्तरी उष्ण कटिबंधीय आर्द्र पर्णपाती एवं दक्षिणी मिश्रित उष्ण कटिबंधीय शुष्क पर्णपाती वन में विभाजित किया जा सकता हैं। इस बायोस्फियर रिजर्व में पहले प्रकार के वन की खास विशिष्टता हैं। यह क्षेत्र दो जैविक हॉट स्पॉटस् जैसे पश्चिमी घाट एवं पूर्वी हिमालय के सम्पर्क कराने की वजह से जेनेटिक एक्सप्रेस हाईवे के नाम से भी जाना जाता है एवं उत्तरी तथा दक्षिणी भाग में पाये जाने वाले वनस्पतियों का भी मिलन क्षेत्र प्रदान करता हैं। यह क्षेत्र वानस्पतिक विवधताओं से परिपूर्ण है। विभिन्न ऊचांई पर विभिन्न प्रकार की जलवायु एवं मृदा के होने के कारण इनमे प्रचुर एवं परिपूर्ण मात्रा में वनस्पतियां होती हैं। सर्वेक्षण के अनुसार कुल 1000 से अधिक प्रजातियॉ 151 पादप कुल से सबंधित हैं। जिनमें थैलोफाइट्स ब्रायोफाइट्स एवं टेरिडोफाइट्स की कुल 95 प्रजातियॉ पाई जातीं हैं। यह जैव विविधता के फैलाव एवं तुलानात्मक रूप से अच्छे ट्रॉफिक स्टेटस के घटक हैं क्योंकि विपरीत परिस्थितियों में सबसे पहले विलुप्त हो जातें हैं। पुष्पीय पौधों मे से 656 प्रजातियॉ जो 385 वर्गो एवं 103 कुल से सम्बंधित हैं, द्वि-बीजपत्रीय हैं एवं 228 प्रजातियॉ, जो 119 वर्गो एवं 24 कुलो से सम्बंधित है, एकबीज पत्रीय है। जिम्नोस्पर्म की 15 प्रजातियों का रोपण कुछ साल पहले किया गया है, जो इस क्षेत्र के लिए अनुकूलित हो गयी है एवं बहुत अच्छे तरह से वृद्धि कर रहें हैं। द्विबीजपत्रीय एवं एकबीजपत्रीय प्रजातियों का अनुपात क्रमशः 74.17 प्रतिशत एवं 25.83 प्रतिशत है जबकि विश्व के वनस्पतियों में इनका अनुपात क्रमशः 81.30 प्रतिशत एवं 18.70 प्रतिशत है। इस प्रकार विश्व स्तर पर इस बायोस्फियर रिजर्व में एकबीज पत्रीय प्रजातियों का प्रतिशत सबसे ज्यादा है। इसका कारण इस बायोस्फियर रिजर्व में अनेक प्रकार के घासों का पाया जाना है। कुल पुष्पीय पौधों मे पोऐसी कुल की 109, फैबेसी की 83, एस्टेरेसी की 66, साइप्रेसी की 36, एकेन्थेसी की 31, लेमिएसी की 26, मालवेसी की 23, स्क्रोफुलेरियेसी की 23, रूबीएसी की 21 तथा युफोरबियेसी की 20 प्रजातियॉ इस क्षेत्र में पाई जाती हैं।

पर्वतों की ढलान, बारहमासी धाराओं एवं घने छायॉदार स्थल इस क्षेत्र में सूक्ष्म वातावरण का निर्माण करती है, जो पर्यावरण विविधताओं की स्थितियॉ उपलब्ध कराती है तथा अनेक नमी पसंद करने वाले प्रजातियों जैसे फर्न, आर्किड्स, ब्रायोफाइट्स, शैवाल एवं अनेक जड़ी -बूटियां, झाड़ियाँ यहां काफी संख्या में पाई जाती हैं। इन्हें इस क्षेत्र का जीन बैक कहा जाता हैं। टेरीडोफाइट्स प्रजाति की 25 से ज्यादा प्रजातियॉ इस क्षेत्र में पाई जाती है। फर्न की मुख्य प्रजातियों में से एल्युप्टेरिस फैरिनोसा, सिलेजिनैला सिलिएरिस, सिलैजिनेला लांगीपिला, इक्वीजिटम डेबाइल, टेरिस क्वाड्रीआरिटा, सिरेप्टेरिस थैलिक्रबाइडिस , व्लीचनम ओरैन्टियेल, आसमुण्डा प्रजाति, एथीरियम फल्केटम टेक्टेरिया मैक्रोडोन्टा ,लाइगोडियम प्लेक्सुओसम, आफियोग्लोसम रेटीकुलेटम इत्यादि सामान्यतः इस क्षेत्र में पाये जाते हैंर्। जलीय फर्न जैसे मार्सीलिया मिन्यूटा एवं मार्सीलिया क्वैड्रीफोलिया इस क्षेत्र के तालाबों मे पाये जाते हैं। नर्मदा नदी के उद्गम स्थल के समीप करीब 1 किमी क्षेत्र में ड्रांसेरा प्रजाति नाम का कीट भक्षी पौधा बहुतायत में पाया जाता हैं इसीलिए इस क्षेत्र को ड्रोसेरा पठार भी कहते हैं। पुष्पीय प्रजातियों की बहुत सी दुलर्भ प्रजातियां इस क्षेत्र मे पाई जाती हैं। कपिलधारा, सोनमुड़ा आमाडोह, दिवधारा, लैमिनी घाटी, अचानकमार, पनारपानी, सरसाडोल इत्यादि स्थलों पर ये प्रजातियां पाई जाती हैं। साल इस क्षेत्र की प्रमुख प्रजाति है। जिम्नोस्पर्म प्रजातियाँ, जिसका इस क्षेत्र में पूर्व में वृक्षारोपण किया गया था, वे प्रायः अमरकंटक पठार पर केन्द्रित हैं। इनमे से *क्युप्रेसस टोरयुलोसा, थूजा ओरियेन्टेलिस ,अरौकेरिया विडविली, पाइनस कैरीविया, पाइनस इल्लोटी, पाइनस ग्रीगेई ,पाइनस केसिया ,पाइनस माउन्टजुमी, पाइनस ऊकार्पा ,पाइनस पटूला ,पाइनस पान्डीरोसा, पाइनस स्युडोस्ट्रीवस, पाइनस राक्सबर्घाई, पाइनस सिरोटिना, सीड्रस दवेदारा , जूनीपेरस*

प्रजाति एवं टैक्सोडियम प्रजाति की जिम्नोस्पर्म प्रजातियों का इस क्षेत्र के लिए जीन बैंक कहां जा सकता है। इस क्षेत्र में 105 से ज्यादा औषधीय प्रजातिया पाई जाती है। इनमें से करीब 25 प्रजातियाँ विरले प्रकार की है।

स्थलाकृति एवं सांस्कृतिक विशेषताएँ

अचानकमार अमरकंटक बायोस्फियर रिजर्व में आदिवासी जनजातियों की प्रचुरता है। इस क्षेत्र में कुछ प्रमुख समुदायों मे गोंड एवं उप जनजातियों जैसे मारिया, मुण्डिया, गुरवा, भगरिया एवं राज गोण्ड मुख्य रूप से पाये जाते हैं। अन्य जनजातियॉ बैगा, कोल, कवर, प्रधान हैं। गोंड की उत्पत्ति द्रविण सभ्यता से हुई हैं एवं इनकी बोली गोण्डी एवं दुरली हैं।

अचानकमार-अमरकंटक बायोस्फियर रिजर्व का विशेष आकर्षण स्थल

बायोस्फियर रिजर्व क्षेत्र में अमरकंटक पठार एवं अचानकमार अभयारण्य पर्यटकों को विशेष रूप से आकार्षित करते हैं। इस क्षेत्र में ठहरने एवं आने जाने की सुविधा में वृद्धि के कारण पर्यटकों की संख्या में बृद्धि हो रही है। अमरकंटक क्षेत्र में चौरादादर, कबीर का चबूतरा, दुग्धधारा, सोनमुढ़ा, नर्मदा उद्गम के पवित्र मन्दिर एवं शम्भूधारा तथा अचानकमार अभयारण्य में राक्षाशंख सिंहवाल सागर एवं मेदिनी सराय देखने योग्य है। नर्मदा मन्दिर, माई की बगिया, सोनमुदा, सिद्धि विनायक एवं पारस विनायक, पातालेश्वर महादेव एवं शिवमन्दिर (जलेश्वर) अमरकंटक के समीप है जबकि नागहरा अचानकमार अभयारण्य में है। अमरकंटक में रंगमहल एवं अचानकमार अभयारण्य मे पाडवनी तालाब तथा लक्ष्मण डोगरी, जिनका इस क्षेत्र में खास ऐतिहासिक महत्व हैं, पर्यटकों को विशेष रूप से आकर्षित करते है।

पादप वर्गीकरण और पर्यावरण संरक्षण तथ्य

वी. के. रावत[1], अच्युत नंद शुक्ला, ओ. एन. मौर्य[2] एवं दिनेश कुमार अग्रवाला

[1]भारतीय वनस्पति सर्वेक्षण, ईटानगर
[2]भारतीय वनस्पति सर्वेक्षण, ईलाहाबाद
भारतीय वनस्पति सर्वेक्षण, कोलकाता

मनुष्य अपने अस्तित्व में आने के कई वर्षों बाद एकत्रित होकर समूहों मे रहना सीखा और कालांन्तर में अपने इर्द-गिर्द उपलब्ध जैव और अन्य संसाधनों की विविधता को पहचानने और उनका नामकरण करना शुरू किया। अलग-अलग संस्कृतियों में विभिन्न तरह से विविधताओं को नामकरण करने का प्रयास किया गया। जीवों के पहचान, नामकरण तथा वर्गीकरण के विज्ञान को वर्गिकी तथा पौधों से सम्बधित इस विद्या को वर्गीकरण वनस्पति विज्ञान कहते है। नामकरण के द्वारा हम किसी पहचाने हुए पौधे का ठीक से नाम देते हैं जो नामकरण की विधि का ध्यान रखते हुए वैज्ञानिकों को मान्य हो। एक बार कोई पौधा पहचान लिया जाय तो उसका वैज्ञानिक नामकरण आवश्यक है जिससे अन्य लोग भी उसे जान सकें। पौधों का नामकरण अन्तर्राष्ट्रीय महत्व रखता है क्योंकि वर्गिकी विज्ञान पौधों का नामकरण ''अन्तरर्राष्टीय वानस्पतिकी नामकरण विधि'' के आधार पर करता है। इस विधि में उन समस्त बातों का वर्णन है जिनको ध्यान में रख कर हमें किसी नये पौधे का नामकरण करना चाहिए। वर्गीकरण द्वारा हम किसी पौधे को एक उचित वर्ग में रखते हैं। प्रत्येक जाति किसी एक जीनस, एवं हर एक जीनस किसी एक कुल, एक पद्धति तथा पद्धति किसी दर्जा में वर्गीकरण द्वारा नामांकित रहता है। वर्गिकी के अध्ययन द्वारा हम संसार के पौधों की किस्में एवं उनके नाम, उनकी विभिन्नताऐं तथा वन्धुता, उनके वितरण एवं निवासों की विशेषताओं का ज्ञान प्राप्त करते हैं और उन्हें शोध कार्यों द्वारा प्राप्त अन्य वैज्ञानिक आंकड़ों के आधार पर समझते हैं। जाति उद्भवन का विषय वर्गिकी की एक जटिल समस्या रही है। ''स्पीसीज क्या है''? स्पीसीज को जैविक इकाइ मानते हैं और जेनेरा एवं स्पीसीज को आनुवांशिक, पारिस्थितिक और आकृतिक कसौटी द्वारा प्राप्त आँकड़ों के आधार पर मान्यता दी जाती है। संसार के वनस्पति का ज्ञान अभी अधूरा है और इसे पूर्ण करने के लिए हमें पहले नए स्थानों की खोज करना, पौधों को जमा करना और उनका अध्ययन एवं वर्गीकरण करना तथा दूसरा कार्य उन पौधों को सूचीबद्ध एवं सम्बंधित ग्रंथों के प्रकाशन का होता है।

भारत में पादप वर्गीकी के क्षेत्र में बहुत कार्य हुआ एवं इससे सम्बंधित कुछ महत्वपूर्ण ग्रंथ प्रकाशित हुए हैं जो वनस्पतिज्ञों के लिए आज भी पादप वर्गीकी के आधार हैं। इनमे सम्मलित हैं जे.डी. हुकर (1676-1697)-द्वारा लिखित-फ्लोरा ऑफ बिटिश इण्डिया (7 भाग, यह संवहनी पौधों की सूची है), यू.एन. कांजीलाल इत्यादि-फ्लोरा ऑफ आसाम (5 भाग) इस सूची में वन वृक्षों एवं जंगली झाड़ियों का वर्णन है। जे.एफ. ड्थी (1903) -फ्लोरा ऑफ अपर गैंजेटिक प्लेन, (उत्तर प्रदेश में पाये जाने वाले पुष्पधारी पौधों का नाम, वर्णन तथा कुंजी दी गयी हैं)। डी. प्रेन (1963)-बंगाल प्लान्टस्। टी. कुक (1901)-फ्लोरा ऑफ इण्डियन डेजर्ट। ई. ब्लाटर (1918-21)-फ्लोरा ऑफ द प्रेसिडेन्सी ऑफ बाम्बें

वर्गीकरण का इतिहास

एक अथवा कुछ गुणों से अपनी सुविधा से पौधों को पहचानने के हेतु वर्गीकरण की प्रणाली को कृत्रिम कहते हैं। प्राकृतिक प्रणाली में उन समस्त अवस्थाओं तथा सूचनाओं का प्रयोग किया जाता है जो प्रकृति में मिलती हैं। जीवों के विकास अनुक्रम एवं आनुवंशिक सम्बन्धों पर ध्यान रखकर वर्गीकरण करने को जातिवृत्तीय प्रणाली कहते हैं। जातिवृत्तीय प्रणाली कहे जाने वाले वर्गीकरण प्राकृतिक एवं जतिवृत्तीय प्रमाणों पर आधारित होते हैं।

लीनियस की प्रणाली लिंगभेद पर आधारित है और पौधों का वर्गीकरण लैंगिक भागों की संख्या एवं विन्यास आधारित है।

स्वभावरूप पर आधारित वर्गीकरण

थीयोफ्रेस्टस (370-285बी.सी.) अपने गुरू अरस्तू एवं उनके भी गुरू प्लूटो का वर्गीकरण पद्धति के अनुसार पौधों को वृक्ष, झाड़ी, शाक तथा एकवर्षीय एवं बहुवर्षीय वर्गों में विभाजित किया। इन्होंने पुष्पक्रमको अभिकेन्द्री तथा अपकेन्द्री वर्ग में और पुष्प-पंखुडियों को युक्तदली एवं पृथकदलीय में विभाजित किया। इनकी पुस्तक ''हिस्टारिका प्लैन्टेरम'' में करीब 480 वर्ग के पौधे वर्णित हैं।

लीनियस की लैंगिक आधार पर वर्गीकरण की पद्धति एक महत्वपूर्ण देन थी और उनके सभी कार्यों में महान थी। लीनियस के लैंगिक सिद्धान्त के आधार पर 24 वर्गा में पौधे विभाजित किये गये। पौधों को पुकेसर की संख्या, संघ एवं लंबान के हिसाब से वर्गों में विभाजित किया गया। पुष्प में वर्तिका की संख्या के आधार पर पौधे अनेक उपवर्गों में विभाजित हए। लीनियस द्वारा 1753 में प्रकाशित ''स्पीसीज प्लैंटेरम'' आज भी संवहनी पौधों की वर्गिकी के लिए महत्वपूर्ण हैं।

आकार पर आधारित पद्धतियां

अठारहवीं शताब्दी के दूसरे भाग में संसार के सभी देशों सें, अनेक जीवित पौधे, बीज तथा वनस्पति संग्रह यूरोप में लाये गये। इनमें बहुत सी नयी प्रजातियां थी।

बेंथम और हुकर ने लैटिन में ''जनरा प्लैंटेरम'' तीन भागों में प्रकाशित किया जो उस समय का एक महान ग्रन्थ था। सर जोशेफ डाल्टन हुकर (1817-1911) वनस्पति वैज्ञानिक सर विलियम जे. हुकर के पुत्र थे और बेंथम से अधिक अन्वेषण एवं वनस्पति भौगोलिक थे। बेंथम और हुकर ने 1857 में मिलकर 'जनरा प्लैन्टेरम' (1862-1883) लिखा जिसमें अपनी बतायी हुयी पद्धति से बीजवाले पौधों के सभी जनरा का वर्णन एवं वर्गीकरण किया, इस पुस्तक का दो तिहाई भाग बेंथम ने 25 वर्ष में लिखा था। बेंथम और हुकर की पद्धति डी कंडोल के आधार पर है।

जाति-वृत्त पर आधारित पद्धतियां

डारविन के बढ़ते हुए प्रभाव से डी कंडोल पद्धति की त्रुटियां सामने आने लगीं और सर्वप्रथम उस पद्धति का बहिष्कार किया और 1868 में एक मिली जुली पद्धति चलायी जो कभी मान्य नहीं हुई। चौथे काल की अधिकतर पद्धतियां पौधों के विकास क्रम पर आधारित थी। एंगलर की पद्धति से संसार के समस्त पौधों का वर्गीकरण आसानी से किया जा सकता था। इसीलिए यह अमेरिका के सभी बड़े-बड़े वनस्पति संग्रहालयों में अभी भी मान्य हैं। आवृत्तबीजी पौधों का जातिवृत्तीय अध्ययन फासिल प्रमाणों के अभाव से प्रगति नहीं कर सका। उदाहरण स्वरूप संहवनी पौधों में पत्तियां तथा पुष्प पंखुड़ियां का डंठल पर सर्पिल क्रम से लगना एक सरल अवस्था माना जाता है। अनेक चक्रीय पत्तियों का क्रम भी सर्पिलाकार क्रम से विकसित हुआ है। आज का युग आण्विक विज्ञान का है और विश्व स्तर पर जीवों को उनके डीएनए पर आधारित और उन जीवों को और गहराई से जानने व समझने का प्रयास अपने चरम सीमा पर हो रहा है। यह कहना अतिश्योक्ति होगा कि लिनियस द्वारा प्रतिपादित वर्गीकरण के सिद्धान्तों की पुष्टि अथवा खण्डन करेंगे या नहीं परन्तु अभी तक प्राप्त जानकारिया लिनियस के वर्गीकरण की पुष्टि करती है। इसके सम्बन्ध में स्पीसीज की 'बारकोडिंग' का उल्लेख करना आवश्यक होगा। एक ऐसी विधि जिसमें कोशिका डीएनए के एक अतिसूक्ष्म सर्वसम्मति से चुने गये हिस्से को आधार मानकर प्रयोग किया जाता है उसे 'बारकाडिंग' करते है। अतिशीघ्र, सस्ती और विश्वसनीय परिणाम देने वाली यह विधि डीएनए पर आधारित होती है। इसके अन्तर्गत डीएनए के सूक्ष्म भाग को प्रयोग करते हुए इनके जातियों का पृथक्करण किया जा सकता है।

आवृतबीजी पौधों का वर्गीकरण

अनेक बैज्ञानिकां ने विभिन्न लक्षणों को मुख्य आधार मानकर बीजीय पौधों का वर्गीकरण किया। वर्गीकरण की तीन पद्धतियाँ है-

1. कृत्रिम 2. प्राकृतिक पद्धति 3. जातीय वृतीय

1. **कृत्रिम:** इस पद्धति में पौधों के वर्गीकरण का आधार केवल एक या कुछ लक्षण होते हैं। वर्गीकरण की कृत्रिम पद्धति निम्नवत है-

(i) थियोफ्रेस्टस (370-287 ईसा पूर्व) ने ''हिस्टारिका प्लैन्टेरम'' नामक पुस्तक में 480 पौधों का निम्नवत चार भागों में

वर्गीकरण किया पेड़, झाड़ियाँ ,छोटी झाड़िया, शाक। उन्होंने पौधों को एकवर्षीय, द्विवर्षीय तथा बहुवर्षीय में भी विभेदित किया। थियोफ्रेस्टस को 'बनस्पति-विज्ञान का जनक' कहा जाता है।

(i) कैरोलस लिनियस ने सन् 1753 में 'स्पीशीज प्लान्टेरम' नामक पुस्तक लिखी तथा सन् 1754 में जेनरा प्लान्टेरम तथा 'फ्लोरा लेप्पोनिका' नामक पुस्तके लिखी। कैरोलस लिनियस ने पौधों को पुंकेसरों की संख्या, एकलिंगी या द्विलिंगी तथा अण्डपों की संख्या के आधार पर 24 भागों में विभाजित किया इसे वर्गीकरण का लैंगिक पद्धति भी कहते हैं। इसे पद्धति का दोष यह है कि कुछ समान पौधे अलग वर्गों में और असमान पौधे एक ही वर्ग में रख दिये गये हैं। लिनियस को पादप-वर्गिकी का पिता कहा जाता है। पौधे का नामकरण का प्रयास पूर्व में कई वैज्ञानिकों ने करने का प्रयास किया, परन्तु पौधों के नामकरण की द्विपद नाम पद्धति को प्रचारित करने का श्रेय स्वीकन के वैज्ञानिक कैरोलस लीनियस को जाता हैं। सन! 1753 में सर्वप्रथम इन्होनें पद्धति को प्रतिपादित किया था किसी भी वैज्ञानिक का नाम प्रथम भाग प्रजातिया व द्वितीय भाग जातीय नाम को प्रदर्शित करता है।

2. प्राकृतिक पद्धति इस पद्धति में पौधों के अनेक गुणों को ध्यान में रखते हुए वर्गीकरण किया जाता है बेन्थम एवं हुकर ने जेनेरा प्लेन्टेरम नाम की पुस्तक लिखी जा तीन भागों में प्रकाशित हुई। इनकी पद्धति पर ही भारत के बड़े-बड़े हरबेरिया (देहरादून, कोलकाता, लखनऊ) आधारित हैं। इन्होंने लगभग 97205 प्रजाति के पौधों को 202 गुणों में विभाजित किया, जिन्हें कोहोर्ट्स कहा (ये वर्तमान में कुल हैं)।

3. जातीय वृतीय इस पद्धति में पौधों का वर्गीकरण उनके विकास तथा जनन गुणों के आधार पर किया जाता है। ए0एल0 टख्टाजान (1967) ने अपनी पुस्तक **'A** System of Phylogency of Flowering Plants' को दो खण्डों मे लिखा (टवस प्ण् द्विबीजपत्री टवसण्प्ण् एकबीजपत्री)। उन्होंने आवृतबीजी पौधों को 411 कुलों में विभाजित किया-विभाग Magnoliophta (अथवा Angiosperm) वर्ग Magnoliatae (अथवा Dicot) इन्हें 7 उपवर्गों 15 सुपर कर्मों तथा 20 क्रम में विभाजि किया। वर्ग Liliate (अथवा Monocot) इन्हे 4 उपवर्गों, 5 सुपर कर्मों तथा 20 क्रम में विभाजित किया। इन्होंने 'Taxonomy without Phylogeny may be just like bones without flesh' वाली कहावत को अनुमोदित किया।

पौधों की नाम-पद्धति में टाइप नियम

होलोटाइप-इस प्रकार की प्रतिरूप या अन्य तत्व है, जो नाम-पद्धति-प्ररूप (अर्थात् तत्व जिससे टैक्सान का नाम स्थायी रूप से संलग्न रहता है) के रूप में लेखक द्वारा प्रयुक्त या निर्दिष्ट किया गया है।

लेक्टोटाइप-उस प्रकार का प्रतिरूप या अन्य तत्व है जो नाम-पद्धति-प्ररूप में प्रयुक्त करने के लिए मूल पदार्थ से चुना गया है, जबकि प्रकाशन के समय होलोटाइप को नामकृत नहीं किया गया था या होलोटाइप उपलब्ध नही हो।

पाराटाइप-उस प्रकार का प्रतिरूप है जो होलोटाइप के अतिरक्ति मूल विवरण के साथ उद्धृत है।

आइसोटाइप- आइसोटाइप को होलाटाइप का द्विक रूप माना जाता है।

सिनटाइप- दो या दो से अधिक प्रतिरूपों या तत्वों मेंसे एक है जो लेखक द्वारा तब प्रयोग किया जाता था जब कोई होलोटाइप निर्दिष्ट नहीं रहता था या होलोटाइप के स्थान में प्रयुक्त होता था या दो या दो से अधिक प्रतिरूपों में से एक को प्ररूप के रूप में एक साथ नामांकन किया जाता था।

आई.सी.बी.एन

पेड-पौधों के नामकरण के लिए वनस्पतिज्ञों की यह अन्तर्राष्ट्रीय संस्था है जो विभिन्न नियमों के अन्तर्गत पेड़ पौधों के नामकरण में मुख्य भूमिका निभाती है। सर्व प्रथम इसकी शुरूआत 1930 में कैंम्ब्रिज में हुई थी। इस कोड के तीन भाग हैं। 1- सिद्धान्त 2-नियम 3-अनुशंसा

आई.सी.बी.एन. के तहत 6 सिद्धान्त हैं 1- वानस्पतिक नामकरण जन्तु नामकरण से पूणतः स्वतंत्र एवं अलग है 2- किसी भी पादप जाति का नाम उसके प्रकार (टाइप) से निर्धारित होता है। 3- पादप जाति का नामकरण उसके उचित प्रकाशन पर आधारित होता है। 4-प्रत्येक पादप जाति का केवल एक वैज्ञानिक नाम होना चाहिए। 5- प्रत्येक वैज्ञानिक नाम लैटिन भाषा से समायोजित होना चाहिए। 6- नामकरण पूर्वव्यापी होना चाहिए।

आई.सी.बी.एन वनस्पति नामकरण सम्बंधित सिद्धान्त, नियम एवं अनुशंसा से सम्बधित संहिता का संग्रहण है, जिसके द्वारा किसी भी पौधे का नामकरण संहिता के उचित व नियमों के अनुसार किया जाता है। सैद्धन्तिक रूप से आई.सी.बी.एन की शुरूआत लीनियस द्वारा 1 मई 1753 में प्रकाशित स्पशीज प्लेन्टेरम के प्रकाशन के समय से मानी जाती है। वर्तमान में 17वीं वानस्पतिक सभा के निणयों पर आधारित है। इससे पूर्व आई.सी.बी.एन जो वियना में आयोजित में सेन्ट लुई कोड (2000) टोकियो कोड - वियना कोड (2006) अस्तित्व में है (1994) चलन में थे, इनके नियमानुसार आंशिक परिवर्तनकर वर्तमान संहिता चलन में है। कृषि पौधो के लिए अलग कोड बनाया गया है। सम्पूर्ण संहिता में 5 सिद्धान्त, व नियम समर्थन के सम्बन्ध में आई.सी.बी.एन 14 खण्ड है। खण्ड 1, टैक्सा व उसके क्रम से सम्बंधि, 2 टिपीफिकेशन, व नाम के चयन, 3 टैक्साकि नामकरण, 4 नामकरण के प्रभावी व उचित प्रकाशन से सम्बंधित है।किसी भी श्रेणी के वर्गिकीय समूह को टैक्सोन कहते हैं। अगर कोई वैज्ञानिक किसी नयी जाति का नामकरण करता है तो उसे संहिता के नियमों का कड़ाई से पालन करना पड़ता है। तथा नये नाम को अन्तराष्ट्रीय ख्याति प्राप्त पत्रकाओं के माध्यम से प्रचारित करना पड़ता है।

पादपालय - यह संरक्षित पौधों का संग्रह होता है जो किसी सीट पर चिपकाया जाता है एवं इन निर्देर्शों (स्पेशीमन्स की किसी पादप वर्गीकरण के अनुसार व्यवस्थित किया जाता है)। पादपालय, पादप से सम्बंधित सूचनाओं की जानकारी मिलती है भारत के पादपालय में पादप व्यवस्था वेन्थम हुकर के वर्गीकरण के अनुसार की गई है। यह पादप वर्गिकी का महत्वपूर्ण भाग है। विश्व के सबसे बड़े पादपालय में पेरिस, न्यूयार्क बॉटेनकल स्वीडेन नेचुरल गार्डन पादपालय, रायल बॉटेनकल गार्डेन पादपालय क्यू, इग्लैण्ड, क्रमरोव बॉटेनिकल इन्टरीयल पीटर्सवर्ग, मिसोरी बॉटेनीकल गार्डन पादपालय सेंट लुईस, अमेरिका, केन्द्रीय राष्ट्रीय पादपालय कोलकाता, भारत सम्मिलित है।किसी क्षेत्र विशेष से संग्रह किये गये पौधेको सुखाकर, मक्यूरिक क्लोराइड से परिरक्षित कर पादपालय शीट पर उचित रूप से चिपकाने से उपचारित करने के पश्चात पादपालय में सम्बन्धित कक्ष में सुरक्षित व संरक्षित रखते हैं।

हिमालय में (विश्व का सबसे ऊंचा पर्वत, माउन्ट एवरेस्ट सहित) लगभग 6000 मी. की ऊँचाई तक संवहनी पादप की उपस्थिति आंकी गई है।

बॉटेनिकल गार्डन - यह जीवित पेड़ पौधे के संग्रह स्थल होते हैं। पर स्थाने (एक्स-सीट) संरक्षण का भाग होते हैं। यहां सकतग्रस्त विरल या सामान्य पेड़ पौधों के उनके आवास स्थल से लाकर प्रभावी संरक्षण किया जाता है। सर्वाधिक पुराना व बड़ा गार्डन इण्डियन वोटेनिकल गार्डन है। जहां 15,000 से अधिक प्रकार के पेड़ पौधे है जो रावर्ट किड द्वारा 1787 में स्थापित किया गया था। भारत में अब तक 100 से अधिक बड़े वोटेनिकल गार्डन स्थापित किये जा चुके हैं।

भारत के पादप भौगोलिक क्षेत्र

1- पश्चिम हिमालय, 2-पूर्वी हिमालय, 3-गंगा का मैदान, 4-शुष्क एवं अर्धशुष्क क्षेत्र, 5- उत्तर पूर्व भारत, 6- डक्कन पठार 7-पश्चिमी घाट, 8-पूर्वी घाट, 9- तटीय क्षेत्र, 10-अण्डमान एवं निकाबार द्वीप समूह, 11 लक्षद्वीप

फसलों के 10 उत्पत्ति स्थल

बेबीलोन के अनुसार विश्व में फसलों के 10 उत्पत्ति स्थल हैं जिसमें से भारत भी सम्मलित हैं।

1- चीन जापन क्षेत्र 2- हिन्दुस्तान क्षेत्र (इण्डो-मलायन क्षेत्र) 3- मध्य एशिया 4-पूर्वी क्षेत्र 5- भू-मध्य सागरीय क्षेत्र 6-एवीसीनियन क्षेत्र 7- दक्षिण मैक्सिको एवं मध्य अमेरिकी क्षेत्र 8- दक्षिण अमेरिकी क्षेत्र (पेरू, इक्वाडोर, बोलिबिया) 9- चिली, 10- ब्राजील एवं पेरागुए

उदवार्डी (1975) ने 12 क्षेत्र व रोड्रग्स व पवांर (1988) ने 10 जैव भौगोलिक क्षेत्रों में विभाजित किया है। चैम्पियन व सेठ (1986) के अनुसार भारत में 16 प्रकार के वन पाये जाते हैं।

जैव विविधता के संवेदनशील स्थल

ऐसे स्थान, जहां पर प्रजातियांकी पर्याप्तता तथा स्थानीय प्रजातियां की अधिकता पायी जाती है लेकिन साथ्ज्ञ ही इन जीव प्रजातियां के अस्तित्व पर निरन्तर संकट बना हुआ है। अर्थात जांस्थानीय एवं वैश्विक दृष्टि से जातियों की समृद्धता है लेकिन आवास विनाश का संकट बना हुआ है। ऐसे स्थलों को संवेदनशील क्षेत्र कहते हैं।

'हॉट स्पॉट' या 'संवेदनशील स्थल' शब्दों का सर्वप्रथम प्रयोग प्रसिद्ध ब्रिटिश पारिस्थितिकविद् नार्मन मायर्स ने 1988 में किया। उन्होनें ने स्पष्ट किया कि जहां स्थानीय जातियों की आनुपातिक दृष्टिसे अधिकता पायी जाती है वहां उच्च दर से आवास में विनाश हो रहा है। पारस्थितिकविदों ने विश्वमें 25 'हॉट स्पॉट' की पहचान की है। विश्व में चिन्हित कुल 25 हॉट स्पॉट में से 2 भारत में स्थितहैं। जिनका विस्तार पड़ोसी देशों की सीमाओं तक हैं। भारत का प्रथम हॉट स्पॉट पश्चिमी घाट है जिसका विस्तार श्रीलंका तक है। दूसरा स्थल पूर्वी हिमालय है यह म्यांमार तक विस्तृत है।

भारत की समृद्ध पादप विविधता के तप्त स्थल

1- अण्डमान निकोबार द्वीप समूह, 2- अगस्तमलाया की पहाड़िया, 3- अन्नामलाई की पहाड़ियां 4- पालनी 8- नीलगिरी-साइलेन्ट वेली, 9- महाबलेश्वर-खण्डाला क्षेत्र 10- मराठवाडा-सतपुडा क्षेत्र 11- छोटा नागपुर पठार 12- राजस्थान-अरावती 13- खासी जैंतिया की पहाडियां 14-आसाम 15-अरूणाचल प्रदेश 16-सिक्कम 17- कुमायूं-गढवाल, 18- लाहौल

पर्यावरण संरक्षण संगठन प्राकृतिक संरक्षण के लिए अन्तर्राष्ट्रीय संघ (IUCN)

प्राकृतिक संरक्षण के लिए अन्तर्राष्ट्रीय संघ ;प्दजमतदंजपवदंस न्दपवद वित ब्वदेमतअंजपवद वि छंजनतमरू प्न्ब्छद्ध की स्थापना 1948 में की गयी थी जिसके लगभग 126 सदस्य देश हैं। जीव-जन्तुओं एवं पादप जातियों के अस्तित्व के सम्बन्ध में प्न्ब्छ द्वारा 9 श्रेणियों में निर्धारित किया गया है। जिसमें लुप्तप्राय, संकटग्रस्त एवं विरल मुख्य हैं। इसका मुख्यालय मार्गस स्विट्जरलैण्ड में है। यह संयुक्त राष्टसंघ एवं अन्य अन्तर्सरकारी एजेंसियों के लिए विश्व में कोष (WWF) के कार्यों के साथ समन्वय स्थापित कर वैज्ञानिक रूप से संरक्षण तकनीक को बढ़ावा देता है। सन् 1969 से यह संस्था विलुप्त प्राय, असुरक्षित तथा दुर्लभ जीवों तथा पादपों से संबंधित रेड डाटा बुक जारी करती है। इस पुस्तक में संकटापन्न प्रजातियों की सर्वाधिक संख्या पक्षियों की 321 दिखाई गयी है। उल्लेखनीय है कि भारत में सर्वाधिक संख्या में संकटापन्न जीव हैं। इस पुस्तक में क्रांतिक रूप में संकटापन्न जीवों को गुलाबी पृष्ठों पर दर्शाया जाता है और जैसे ही कोई जीव पर्याप्त संख्या में वृद्धि कर लेता है तो उसको 'हरे पृष्ठों' पर स्थानान्तरित कर दिया जाता है।

साइट्स (CITES)

साइट्स का तात्पर्य है Convention on International Trade in Endangered Species of Wild Fauna and Flora 1973 के वाशिंगटन सम्मेलन में इस पर सहमति बन गयी थी। परन्तु यह 1976 से लागू हुआ। यह विश्व का सबसे बड़ा वन्य संरक्षण समझौता है। यह जीवों तथा उनके अंगां आदि के अंतर्राष्ट्रीय व्यापार को प्रतिबंधित करता है। साइट्स विभिन्न राष्टों को निर्देश भी देता है कि वे अपने राष्ट्र में जीव व्यापार पर नियंत्रण रखें। अबतक इसमें लगभग 22,000 पादप जातियां सूचीबद्ध की गयी हैं। टेरिडोफाइट का सायथियेसी कुल भी सूचीबद्ध किया गया है।

Convention on Biological Diversity (CBD)

1992 में आयोजित पृथ्वी शिखर सम्मेलन में भारत सहित 171 देशों जैव विविधता संधि पर हस्ताक्षर किये यह संधि 1993 से प्रभावी हो गयी। भारत में जैव विविधता से सम्बंधित कानून दिसम्बर 2002 में पारित हुआ इसी के तहत भारत में राष्ट्रीय जैव विविधता

प्राधिकरण का गठन हुआ है। इस समझौते में 42 अनुच्छेद हैं जो क्रमशः अनुच्छेद 1 से 5 में उद्देश्य, प्रयुक्त शब्दावली के अर्थ, नियम एवं देशों के पारंपरिक सहयोग की व्याख्या की गयी है। अनुच्छेद 6 सम्बधित देश द्वारा जैव विविधता के संरक्षण का उचित अध्ययन एवं सूचीबद्ध कानून से संबधित हैं। अनुच्छेद 7 प्राणी एवं पादप सर्वेक्षण व उनकी पहचान एवं सूचीबद्ध से सम्बधित हैं। अनुच्छेत 8 स्वस्थाने संरक्षण एव अनुच्छेद 9 पर स्थाने संरक्षण से सम्बधित हैं। अनुच्छेद 10 जैव विविधता के टिकाऊ एवं दीर्घकालीन उपयोग से सम्बंधित, अनुच्छेद 12 अनुसंधान एवं प्रशिक्षण, अनुच्छेद 13 लोक शिक्षा एवं जनजागरूकता से सम्बंधित है। इसके साथ-साथ अन्य अनुच्छेद तकनीक, सूचना का हस्तान्तरण, तकनीकी व वैज्ञानिक सहयोग, आर्थिक संसाधन, आर्थिक प्रक्रिया एवं प्रबन्धन से सम्बन्धित है। इसके महत्वपूर्ण पहलू निम्न हैं-

- ❖ पेड़, पौधे और जीवों पर संबंधित देशों का अधिकार होगा, जहां पर पाये जाते हैं। यदि उन्हें अन्य देश में ले जाकर उनसे नया उत्पाद विकसित किया जाता है तो उनके पितृ देश को क्षतिपूर्ति दी जानी चाहिए।
- ❖ जैव प्रौद्योगिकियों को न्यायपूर्ण और अनुकूल शर्तों पर उन विकसित देशों से जो आनुवंशिक संसाधनों के उत्पादक हैं, विकासशील देशों को स्थानान्तरित करना।
- ❖ पारपरिक ज्ञान, कौशल, नवाचारों और व्यवहारों के उपयो से होने वाले लाभों में बराबरी की हिस्सेदारी की सहमति।

मांट्रियल समझौता (1987)

ओजोन परत ऊपरी वायुमंडल में गैस की एक प्राकृतिक परत है जो मनुष्यों और अन्य जीवित चीजों को सूर्य से हानिकारक पराबैंगनी (यूवी) विकिरण से बचाती है। ओजोन परत सूर्य के अधिकांश हानिकारक यूवी विकिरण को फ़िल्टर करती है और इसलिए पृथ्वी पर जीवन के लिए महत्वपूर्ण है। संयुक्त राष्ट्र संघ के निर्देशन में ओजोन छिद्र से उत्पन्न चिन्ता निवारण हेतु 16 दिसम्बर, 1987 को मांट्रियल में 33 देशों ने एक समझौते पर हस्ताक्षर किये। ओजोन संरक्षण का यह प्रथम अन्तर्राष्ट्रीय समाझौता था। इसी सम्मेलन में तय किया गया कि 16 सितम्बर को अन्तर्राष्ट्रीय ओजोन संरक्षण दिवस मनाया जाय। इस सम्मेलन में यह तय किया गया कि ओजोन का विनाश करने वाले पदार्थ क्लोरोफ्लोरोकार्बन (CFC) के उत्पादन एवं उपयोग को सीमित किया जाय। भारत ने 1991 में ओजोन परत के संरक्षण के लिए वियना कन्वेंशन और 1992 में ओजोन परत को नष्ट करने वाले पदार्थों पर मॉन्ट्रियल प्रोटोकॉल पर हस्ताक्षर किए और पुष्टि कीए जो ओजोन परत की कमी के हानिकारक प्रभावों को संबोधित करने के वैश्विक कारण के लिए देश की प्रतिबद्धताओं को दर्शाता है। ओजोन प्रोफाइल को भी नियमित रूप से गुब्बारों का उपयोग करके रिकॉर्ड किया जाता है। ण्ण्ण् उन्होंने चेतावनी दी है कि भारत के ऊपर ओजोन परत की थोड़ी सी भी कमी से देश में यूवी.बी विकिरण में बड़े प्रतिशत परिवर्तन हो सकते हैं। बढ़ी हुई यूवी.बी विकिरण मानव स्वास्थ्य के लिए हानिकारक होगी और पौधे और मछली उत्पादन को गंभीर रूप से प्रभावित करेगी। ओजोन छिद्र विकसित हुआ है क्योंकि लोगों ने क्लोरीन और ब्रोमीन युक्त रसायनों से वातावरण को प्रदूषित किया है। इसमें शामिल प्राथमिक रसायन क्लोरोफ्लोरोकार्बन ;संक्षेप में सीएफसीद्धए हैलोन और कार्बन टेट्राक्लोराइड हैं।

पुनः 1998 में आयोजित मांट्रियल प्रोटोकॉल के तहत निम्न व्यवस्थाएँ की गयी-

1. विकासशील देशों को ओजोन परत की क्षति पहुंचाने वाले (CFC) रसायनों की विकल्प तथा ओजोन संगत तकनीक विकसित करने के लिए अन्तर्राष्ट्रीय ऋण उपलब्ध कराने की व्यवस्था की गयी।
2. विकसित देशों को (CFC) का उत्पादन एवं प्रयोग 2000 तक बंद करने का निर्देश दिया गया तथा विकासशील देशों के लिए 2010 तक की समय सीमा निर्धारित की गयी।

अंटार्कटिका के ऊपर ओजोन छिद्र आमतौर पर जमे हुए महाद्वीप के दक्षिण अमेरिकी हिस्से में अधिक स्पष्ट होता है। इससे सबसे ज्यादा प्रभावित देश अर्जेंटीनाए चिलीए दक्षिण अफ्रीकाए न्यूजीलैंड और ऑस्ट्रेलिया हैं। सितंबर 2000 में नासा द्वारा अंटार्कटिक में अब तक का सबसे बड़ा ओजोन छिद्र देखा गया था। हम ओजोन परत की रक्षा कैसे कर सकते हैंघ् उनकी सामग्री या निर्माण प्रक्रिया के कारण

ओजोन परत के लिए खतरनाक गैसों के सेवन से बचें। कारों का प्रयोग कम से कम करें। ऐसे सफाई उत्पादों का उपयोग न करें जो पर्यावरण और हमारे लिए हानिकारक हों। स्थानीय उत्पाद खरीदें।

बॉटेनिकल गार्डनः- ये जीवित पेड़ पौधे के संग्रह स्थल होते हैं। पर स्थाने (एक्स-सीट) संरक्षण का भाग होते हैं। यहां सकतग्रस्त विरल या सामान्य पेड़ पौधों के उनके आवास स्थल से लाकर प्रभावी संरक्षण किया जाता है। सर्वाधिक पुराना व बड़ा गार्डन इण्डियन बॉटेनिकल गार्डन है, जहां 15,000 से अधिक प्रकार के पेड़ पौधे हैं जो राबर्ट किड द्वारा 1787 में स्थापित किया गया था। भारत में अब तक 100 से अधिक बड़े वोटेनिकल गार्डन स्थापित किये जा चुके हैं।

टोरण्टों विश्व सम्मेलन (1988)

1988 में टोरण्टों में आयोजित पर्यावरणीय सम्मेलन में एक प्रस्ताव पारित कर सभ्ज्ञी देशों से कहा गया कि वे वर्ष 2005 तक कार्बन डाइआक्साइड के उत्सर्जन में स्वेच्छा से बीस प्रतिशत कटौती करें ताकि ग्रीन हाउस प्रभाव को कम किया जा सके। इस सम्मेलन के प्रस्ताव को विकसित देशों ने गंभीरता से नहीं लिया, क्योंकि विश्व में किये जाने वाले सकल खनिज तेल के उत्पादन से निकलने वाली गैसें ग्रीन हाउस के प्रभाव को बढ़ाती है।

पृथ्वी शिखर सम्मेलन (1992)

स्टॉकहोम सम्मेलन की 20वीं वर्षगाठ मनाने के लिए संयुक्त राष्ट्र संघ ने ब्राजील की राजधानी रियो-डी जेनरो में 1992 में पर्यावरण और विकास सम्मेलन आयोजित किया। इसे अर्थ सम्मिट या पृथ्वी शिखर सम्मेलन भी कहा जाता है। इसमें सम्मिलित देशों ने टिकाऊ विकास के लिए व्यापक कार्रवाई योजना 'एजेंडा 21' स्वीकृत किया।

क्योटो प्रोटोकॉल

क्योटो प्रोटोकॉल संयुक्त राष्ट्र के पर्यावरण बदलाव पर फ्रेमवर्क में संशोधन (UNFCC) है जो वैश्विक तापवृद्धि पर एक अन्तर्राष्ट्रीय संधि है। इस पर समझौता जापान के क्योटो शहर में दिसम्बर, 1997 में हुआ था। क्योटो प्रोटोकॉल एक कानूनी बाध्यकारी समझौता है जिसके तहत एनेक्स-1 में शामिल 38 विकसित देशों (औद्योगिक देश) द्वारा सामूहिक रूप से ग्रीन हाउस गैस उत्सर्जन को 1990 के स्तर से 5.2 प्रतिशत की कमी लाने के लिए 2012 तक कटौती करने का प्रावधान है। इसके लक्ष्य छः ग्रीन हाउस गैसों- कार्बन डाइऑक्साइड, मीथेन, नाइट्रस-आक्साइड, सल्फर हेक्साफ्लोराइड, हाइड्रो क्लोरो फ्लोरो कार्बन और परफ्लूरोकार्बन के उत्सर्जन में 2008-12 के मध्य कमी करना है। संक्षेप मेंए क्योटो प्रोटोकॉलए सहमति आधारित व्यक्तिगत लक्ष्यों के अनुसार ग्रीनहाउस गैसों (जीएचजी) के उत्सर्जन को सीमित करने और कम करने के लिए औद्योगिक देशों और अर्थव्यवस्थाओं को प्रतिबद्ध करके जलवायु परिवर्तन पर संयुक्त राष्ट्र फ्रेमवर्क कन्वेंशन का संचालन करता है।

मॉन्ट्रियल प्रोटोकॉल और क्योटो प्रोटोकॉल में क्या अंतर है ?

मॉन्ट्रियल प्रोटोकॉल ओजोन को समाप्त करने वाले पदार्थों को चरणबद्ध करने के लिए स्थापित किया गया था, क्योटो प्रोटोकॉल को ग्रीनहाउस गैसों के उत्सर्जन को कम करने के लिए स्थापित किया गया था।

कोप सम्मेलन

COP कन्वेंशन का सर्वोच्च निर्णय लेने वाला निकाय है। कन्वेंशन के पक्षकार सभी राज्यों का प्रतिनिधित्व सीओपी में किया जाता हैए यह 197 देशों और क्षेत्रों को एक साथ लाता है - जिन्हें पार्टियां कहा जाता है - जिन्होंने फ्रेमवर्क कन्वेंशन पर हस्ताक्षर किए हैं, जिस पर वे कन्वेंशन के कार्यान्वयन और सीओपी द्वारा अपनाए गए किसी भी अन्य कानूनी साधनों की समीक्षा करते हैं और संस्थागत और प्रशासनिक व्यवस्था सहित कन्वेंशन के प्रभावी कार्यान्वयन को बढ़ावा देने के लिए आवश्यक निर्णय लेते हैं। अक्टूबर, 2002 में नई दिल्ली में जलवायु परिवर्तन पर संयुक्त राष्ट्र देशों का आठवां सम्मेलन सम्पन्न हुआ। इसमें जलवायु परिर्वतन से संबंधित अनेक बिंदुओं पर चर्चा की गयी।

विकासशील देशों की मांग के अनुरूप तकनीक हस्तांतरण, क्षमता, विकास और समयानुकूल बदलाव पर क्रेन्द्रित जलवायु परिर्वतन पर सतत् विकास संबंधी घोषणा पत्र को इस सम्मेलन में सर्वसम्मति से स्वीकार कर लिया गया। संयुक्त राष्ट्र जलवायु परिवर्तन सम्मेलन COP 25 (2 - 13 दिसंबर 2019) चिली सरकार की अध्यक्षता में हुआ और स्पेन सरकार के लॉजिस्टिक समर्थन के साथ आयोजित किया गया। COP 26 UN जलवायु परिवर्तन सम्मेलनए जिसकी मेजबानी यूके द्वारा इटली के साथ साझेदारी में की गई है, 31 अक्टूबर से 12 नवंबर 2021 तक ग्लासगोए यूके में स्कॉटिश इवेंट कैंपस (SEC) में होगी। आज तक, सीओपी ने चौदह सत्र आयोजित किए थे यह 2001 से द्विवार्षिक बैठक कर रहा है। COP 14 2019 में नई दिल्लीए भारत में हुआ। COP 26 संयुक्त राष्ट्र का अगला वार्षिक जलवायु परिवर्तन सम्मेलन है। ब्व्च् का अर्थ है पार्टियों का सम्मेलनए और शिखर सम्मेलन में वे देश शामिल होंगे जिन्होंने जलवायु परिवर्तन पर संयुक्त राष्ट्र फ्रेमवर्क कन्वेंशन (UNFCCC) पर हस्ताक्षर किए थे जो कि - एक संधि है जिसे 1994 में लागू किया गया था। सीओपी हर साल मिलता हैए जब तक कि पार्टियां अन्यथा निर्णय न लें। सीओपी की पहली बैठक मार्चए 1995 में बर्लिनए जर्मनी में हुई थी। सीओपी की बैठक सचिवालय की सीट बॉन में होती हैए जब तक कि कोई पार्टी सत्र की मेजबानी करने की पेशकश नहीं करती।

भारतीय संविधान और पर्यावरण

भारतीय संविधान विश्व का पहला संविधान है जिसमें पर्यावरण संरक्षण के लिए विशिष्ट प्रावधान है। पर्यावरण संरक्षण तथा सुधार के लिए भारतीय संविधान में 1976 में 42वे संविधान संशोधन द्वारा अनुच्छेद 48 क जोड़ा गया है जिसमें निम्न उपबन्ध है।

''राज्य देश के पर्यावरण के संरक्षण तथा उसमें संवर्द्धन और वन तथा वन्य जीवों की रक्षा का प्रयास करेगा।''

अनुच्छेद 51-क खण्ड (छ) स्पष्ट रूप से पर्यावरण संरक्षण का उपबन्ध के उपबंधों को बनाना है। इसके अनुसार- ''भारत के प्रत्येक नागरिक का यह कतर्व्य होगा कि वह प्राकृतिक पर्यावरण की, जिसके अन्तर्गत वन, झील, नदी और वन्य जीव हैं और उसका संवर्धन करें तथा प्राणि मात्र के प्रति दया भाव रखें।

जैव विविधता संधि (1992) के पश्चात् भारत में इससे सम्बंधित विभिन्न कानून पारित हुए जिसमें पर्यावरण कार्यक्रम (1993), उच्च स्तरीय पर्यावरण सलाहकार समिति 1993, सी0बी0डी0 का अनुसर्मथन 1994, पर्यावरण एवं वन मंत्रालय का केन्द्रीय संस्था के रूप में नामांकन 1994, अखिल भारतीय वर्गिकी परियोजना (AICOPTAX) मुख्य हैं। इससे पूर्व जल संरक्षण कानून (1977), वन संरक्षण कानून (1980), वायु प्रदूषण रोकथाम (1981) पर्यावरण संरक्षण (1986) वन्य संरक्षण कानून (1972) इत्यादि पर्यावरण से सम्बंधित भारत के महत्वपूर्ण प्रयास हैं।

जैवविविधता संरक्षण से सम्बंधित दो मुख्य प्रयास होते हैं।

1. स्वस्थाने संरक्षण जिसमें सम्मलित हैं- नेशनल पार्क, वन्य जीव अभ्यारण एवं वायोस्पयर रिजर्व का गठन सम्मलित है। इस प्रकार के संरक्षण में जन्तु या पादप जति का संरक्षण उसके प्राकृतिक आवास में ही किया जाता है।

2. पर स्थाने संरक्षण इसमें जूलॉजिकल पार्क एवं बोटेनिकल गार्डन की स्थापना मुख्य है। इस प्रकार के संरक्षण में जन्तु या पादप जति का संरक्षण उसके प्राकृतिक आवास से दूर किया जाता है।

सूक्ष्म जलवायु

पृथ्वी के धरातल पर ऐसे अनेक भौतिक अथवा स्थलाकृतीय कारक होते हैं, जो एक क्षेत्र विशेष के भीतर जलवायु सम्बन्धी अतिसूक्ष्म भिन्नताऐं पैदा कर देते हैं, जैसे समुद्रतल से ऊंचाई, ढाल की दिशा तथा तीव्रता, पवनोन्मुख तथा विमुख ढालों पर, अथवा घाटीके दोनों ओर ढालों पर सूर्यातप की विभिन्नता आदि। इन सभी के कारण सूक्ष्म जलवायु का निमार्ण होता है। इसी प्रकार वानस्पतिक आवरण की उपस्थिति तथा उसका प्रकार अथवा उसकी अनुपस्थिति भी जलवायु की दिशा में परिवर्तन ला देती है। ''सूक्ष्म जलवायु'' अपने चारों ओर उपस्थित परिक्षेत्र से एक भिन्न में विद्यमान होतीहै तथा अपने अन्दर आवासित जीवसमूह को सर्वाधिक स्पष्ट रुप से प्रभावित करती है। देखा

जाए तो काई जीवधारी भी अपनी सूक्ष्म जलवायु द्वारा ही तो सर्वाधिक प्रभावित होती है।

विशेष क्षेत्रीयता

जब कोई स्पीसीज एक अथवा सीमित क्षेत्र में पायी जाती है तो उसे विशेष क्षेत्री कहते हैं और यह दो प्रकार की होती है।

1. जब स्पीसीज अथवा जीनस नया बना होता है और विसरण द्वारा वह अपने क्षेत्र को बढ़ा नहीं पाता है, इसी को सही माने में विशेष क्षेत्री कहते हैं।

2. जब किसी प्राचीन स्पीसीज अथवा जीनस कुछ पौधे अवशेष मात्र रह कर किसी संकुचित क्षेत्र में ही पाये जाते है और ऐसे पौधे वनस्पति के विकास क्रम में सहयोग नहीं देते, उन जीवों को परिवासी कहते हैं। वर्गिकी किसी पादप समुदाय के इतिहास को जानना चाहता है अतः उसके लिए विशेष क्षेत्रीयता का ज्ञान महत्वपूर्ण है। पृथ्वी के ऐसे प्राचीन भागों में जहाँ अधिक भौमिकी तथा जलवायु में परिवर्तन न हुआ हो और जो पादप भूगोल की दृष्टि से वियुक्त रहे हों उनमें विशेष क्षेत्री और जीवोपरिवासी अधिक पाये जाते हैं।

स्थानिक जातियां सीमित क्षेत्र में होने के कारण संकटग्रस्त अवस्था में बनी रहती हैं, मानवीय गतिविधियां यदि नियंत्रित न हों तो लुप्त होने का खतरा बना रहता है। दूरस्थ द्वीपों व स्थानिक जातियां की उपलब्धता अधिक रहती है जैसे हवाई, गेलेपेगोज द्वीप

स्थानिकता की दो श्रेणियां हैं- 1. पेलियोएन्डेमिक- ऐसी जाति जो पहले विस्तृत क्षेत्रमें पाई जाती थी लेकिन किन्ही कारणों से एक छोटे क्षेत्र में सीमित होकर रह गयी है।

2. जो जाति जिनकी उत्पत्ति अभी है लेकिन प्रजनन के कारण स्वरूप सीमित क्षेत्र में सिमट कर रह गयी है। नियोएन्डेनिक कहलाती हैं।

डब्ल्यू.डब्ल्यू.एफ. के अनुसार कुछ पारिस्थितिक क्षेत्र। जिनमें स्थानिक जातियां की प्रतिशतता अधिक पायी जाती है वे फिनवोस (द.अफ्रीका) हवाई द्वीप (यू.एस.ए.), मेडागास्कर (क्लेडोसेया, कोनगन-आस्ट्रेलिया) हैं।

नियोट्रोपिक्स-मध्य व दक्षिण अमेरिका के ट्रॉपिकल भाग नई दुनियां से सम्बंधित देश हैं। पोलियोट्रापिक्स- अफ्रीका व एशिया के देश (पुरानी दुनिया की देश के रूप में जाने जाते हैं) हैं।

भारत में स्थानिकता

टेक्सोन	जातियों की संख्या	प्रतिशत
ब्रायोफाइट - हरितोद्भिद्	2,426	29
टेरिडोफाइट - पर्णांग	1,200	25
जिम्नोस्पर्म - अनावृत्तबीजी	67	12
एन्जियोस्पर्म - आकृतबीजी	17,527	33

छोटे द्वीपसमूह एक समान आवास प्रकार के कारण स्थानिक जातियों के अस्तित्व के लिये खतरनाक होते है, क्योकि अन्य प्रकार की आवास उपलब्धता नहीं हो पाती और अन्ततः इनकी संख्या में कमी आती रहती है।

1. अण्डमान निकाबार द्वीप समूह, 2. केनरी द्वीप , 3. ईस्टर द्वीप, 4. जुआन फर्नान्डीज, 5. रोड्रिक्स द्वीप, 6. सेशल्स द्वीप, 7. हवाई द्वीप।

स्थानिक पौधे सर्वाधिक रूप से भारत के तीन जैवभौगोलिक क्षेत्रों में पाये जाते है। 1. हिमालय क्षेत्र 2. प्रायद्वीपीय भारत 3. अण्डमान निकोवार द्वीपसमूह। इस तीन क्षेत्रों में प्रायद्विपीय भारतमें स्थानिक जातियां की विविधता सर्वाधिक है।

हिमालय क्षेत्र एक जैवभौगोलिक विशेष क्षेत्र है जो पामीर की पहाड़ियों, तिब्बत क्षेत्र, दक्षिण पश्चिम चीन से समीपस्थ है।

स्थानिक जातियों की उपलब्धता के सम्बन्ध में 3 विशाल क्रेन्द व 25 सूक्ष्म क्रेन्द्र है।

स्थानिकता के विशाल क्रेन्द्र

1. पूर्वी हिमालय (1800), 2. पश्चिमी घाट (1500), 3. पश्चिमी हिमालय (1195)।

स्थानिकता के सूक्ष्म क्रेन्द्र

अण्डमान द्वीप समूह, निकोबार द्वीप समूह, अगस्तमलाया की पहाड़ियां, अन्नामलाई व उच्च पहाडिया, पालनी की पहाडियां, नीलगिरी- साइलैन्ट वैली शिमोगा, महावलेश्वर-खण्डाला श्रृंखला, कोंकण-रामगाड, मराठवाड़ा-सतपुडा क्षेत्र, तिरूपती- कुडप्पा-नलामलाई की पहाडियां, गन्जम, दक्षिण डेक्कन, छोटानागपुर का पठार, काठियावार कच्छ, राजस्थान अरावली क्षेत्र, खासी जैन्तिया की पहाडियां, पतकोई-मणिपुर-लुराई की पहाडियां, आसान, अरूणाचल प्रदेश हिमालय, सिक्किम हिमालय, गढवाल कुमाऊँ क्षेत्र, लाहोल-हिमाचल प्रदेश, कश्मीर-लद्दाख, नेपाल।

औषधीय महत्व के संकटग्रस्त स्थानिक पौधे

1	एधाटोडा वेडोमी	अगस्तमलाया की पहाड़ियां
2	एकोनिटम फेरोक्स	सिक्किम
3	क्लाइटोरिया टेरनेटिया वैर पाईलोसुला	काठियावाड़
4	कोप्टिस टीटा	पूर्वी हिमालय
5	मिरिस्टका मालावारिका	दक्षिण पश्चिम घाट
6	पेनेक्स सीडोजिन्सेंग	पूर्वी हिमालय
7	पिक्रराइजा कुरो	हिमालय क्षेत्र
8	पोडोफिल्लम इमोडी वैर एक्सीलेरिस	सिक्किम
9	सिजीजियम तावनकोरिकम	दक्षिण पश्चिमी घाट

वर्गीकरण के तथ्य

- 20 वीं शताब्दी के आधुनिक टैक्सोनॉमिस्ट पादप वर्गीकरण के मुख्य सिद्धांत के रूप में फ़ाइलोजेनी का उपयोग करते हैं। फाइलोजेनी एक टैक्सॉन का विकासवादी इतिहास है। इस सिद्धांत के द्वारा प्रजातियों की उत्पत्ति और विकास को ध्यान में रखने का प्रयास किया जाता है।
- पौधों के वर्गीकरण का पहला लक्ष्य पृथ्वी पर सभी प्रकार के पौधों को उनके नामए भेदए वितरणए आदतए विशेषताओं और समानता के साथ वर्गीकृत करना है। यह विभिन्न वनस्पति विज्ञान अध्ययनों द्वारा प्रदान किए गए अनुभवजन्य साक्ष्य के साथ अध्ययनों की तुलना करने का भी प्रयास करता है।
- यह हमें पौधों और जानवरों में मौजूद लक्षणों का अंदाजा लगाने में मदद करता है। यह शारीरिक विकास के क्रम का एक विचार देता है। यह स्थानीय जीवों और वनस्पतियों का एक विचार देता है, इस प्रकार हमें स्थानिक प्रजातियों को अलग करने में मदद करता है।
- मूलभूत अंतर यह है कि जानवर और पौधे कार्बनिक यौगिक बनाने के लिए कार्बन लेते हैं। पौधे स्वपोषी होते हैंए जिसका अर्थ है कि वे अपनी कार्बन आवश्यकताओं को केवल वातावरण में कार्बन डाइऑक्साइड सेए या पानी में रहने वाले पौधों के मामले में पानी से पूरा करते हैं।

- टैक्सोनॉमी के घटकरू टैक्सोनॉमी अध्ययन का वैज्ञानिक क्षेत्र है जो साझा लक्षणों के आधार पर संस्थाओं की पहचानए नामकरण और वर्गीकरण से संबंधित है। टैक्सोनॉमी के 4 बुनियादी घटक हैं . लक्षण वर्णनए पहचानए नामकरण और वर्गीकरण
- A.P.de Candolle द्वारा केवल 1813 में टैक्सोनॉमी को एक सामान्य विषय के रूप में मान्यता दी गई थी। उनकी प्रसिद्ध कृति थ्योरी एलिमेंटेयर डे ला बोटानिक नाम की पुस्तक में वर्णित है। टैक्सोनॉमी ग्रीक शब्दों का एक संयोजन है श्टैक्सीश् का अर्थ है व्यवस्था और श्नोमोसश् का अर्थ है नियम या कानून। वर्गीकरण पौधों की पहचानए नामकरण और वर्गीकरण से संबंधित है।
- शास्त्रीय वर्गीकरणरू शास्त्रीय वर्गीकरण को 'रूढ़िवादी वर्गीकरण' के रूप में भी जाना जाता है।
- शास्त्रीय वर्गीकरण आम तौर पर परिचालन प्रक्रियाओं जैसे कि पहचानए नामकरण और प्रजातियों के वर्गीकरण से संबंधित है।शास्त्रीय वर्गीकरण प्रजातियों के भौगोलिक वितरण के साथ.साथ रूपात्मक लक्षणों और शारीरिक डेटा पर आधारित हैए जानकारी हर्बेरियम से एकत्र की जाती है।
- लिनिअस ने सर्वप्रथम व्यवस्थित शब्द दिया। सिस्टमैटिक्स पौधों के वर्गीकरण और उन्हें श्रेणीबद्ध क्रम में व्यवस्थित करने पर आधारित है। व्यवस्थित पौधों और उनके विकासवादी इतिहास का वैज्ञानिक अध्ययन है। सिस्टेमैटिक्स और टैक्सोनॉमी दोनों का अध्ययन व्यवस्थित जीव विज्ञान के रूप में जाना जाता है।
- एंजियोस्पर्म फाइलोजेनी ग्रुप सिस्टम (एपीजी सिस्टम): एपीजी प्लांट टैक्सोनॉमी की आधुनिक ज्यादातर आणविक.आधारित प्रणाली का पहला संस्करण है। यह पहली बार 1998 में प्रकाशित हुआ था जिसे एपीजी प् के रूप में जाना जाता है। फिर 2003 में एपीजी प्प् के रूप में जाना जाता है और 2009 में एपीजी III प्रकाशित हुआ। एपीजी वर्गीकरण मुख्य रूप से एंजियोस्पर्म के संबंध के बारे में ज्ञान के संश्लेषण पर आधारित हैए जो रूपात्मक से आणविक डेटा तक प्राप्त होता है और फ़ाइलोजेनेटिक विधियों का उपयोग करता है। एपीजी वर्गीकरण प्रणाली मेंए केवल मोनोफिलेटिक समूहों को मान्यता दी जानी चाहिए। आदेशों और परिवारों के स्तर से ऊपरए 'क्लैड'शब्द का प्रयोग आम तौर पर किया जाता है।
- एपीजी के लाभरू मोनोफाइलीए फाइलोजेनेटिकए एनाटोमिकलए एम्ब्रियोलॉजीए फाइटोकेमिस्ट्रीए मॉलिक्यूलर फॉर्मल नाम के सिद्धांत पर आधारित एपीजी सिस्टम केवल उन्हीं ग्रुप को दिया गया है जहां मोनोफाइली मजबूती से स्थापित हो चुकी है।
- पैराफिली की समस्या को कम करने के लिएए एंजियोस्पर्म के मोनोकोट और डायकोट में पारंपरिक पृथक्करण को त्याग दिया गया है। एकबीजपत्री के विभिन्न समूहों को आदिम द्विबीजपत्री और अग्रिम द्विबीजपत्री के बीच में रखा गया है।

वर्गीकरण के प्रकार

- 1. अल्फा टैक्सोनॉमी: अल्फा टैक्सोनॉमी टैक्सोनॉमी में पहला और सबसे बुनियादी कदम है। अल्फा टैक्सोनॉमी जीवों की पहचान, विशेषता, वर्गीकरण और नाम दिया जाता है। टैक्सोनॉमी का अग्रणी या खोजपूर्ण चरण मूल रूप से विश्लेषणात्मक है। इसमें उनके लक्षणों के विश्लेषण के लिए पौधों का संग्रह शामिल है।
- 2. ओमेगा वर्गीकरण: बीटा टैक्सोनॉमी के रूप में भी जाना जाता है। ओमेगा टैक्सोनॉमी को प्रायोगिक या बायोसिस्टमेटिक्स चरण के रूप में जाना जाता है। तब यह महसूस किया गया कि पौधों के जीव विज्ञान और रसायन विज्ञान के सभी पहलुओं को जानने से संबंधों की बेहतर समझ दी जाएगी।
- 3. गामा वर्गीकरण: गामा टैक्सोनॉमी में, हम विकासवादी प्रक्रियाओं और पैटर्न का अध्ययन करते हैं।
- 4. केमोटैक्सोनॉमी: केमोटेक्सोनॉमी टैक्सोनॉमिक उद्देश्यों के लिए चरित्र के रूप में रासायनिक जानकारी का उपयोग करता है। कीमोटेक्सोनॉमी रासायनिक चरित्र को महत्व देता है क्योंकि रासायनिक चरित्र आसानी से परिवर्तनशील नहीं होता हैए ये वर्ण स्थिर और असंदिग्ध होते हैं। रासायनिक लक्षण पौधों के बीच रासायनिक संबंधों को उसी तरह दिखाते हैं जैसे रूपात्मक लक्षण

रूपात्मक संबंध दिखाते हैं।

- 5. साइटोटैक्सोनॉमी: साइटोटेक्सोनॉमी में, वर्गीकरण के लिए डेटा के रूप में गुणसूत्र संख्याए आकृति विज्ञानए प्लोइडी स्तर, प्लोइड प्रकार और गुणसूत्र विपथन का उपयोग। इस सापेक्ष रूढ़िवादिता के कारण गुणसूत्र संख्या एक महत्वपूर्ण और अक्सर उपयोग किए जाने वाले टैक्सोनॉमिक चरित्र बन जाते हैं। साइटोजेनेटिक्स, उन अध्ययनों को शामिल करता है जो अर्धसूत्रीविभाजन या अर्धसूत्रीविभाजन में गुणसूत्रों की जोड़ी या व्यवहार के अवलोकन से संबंधित हैं।
- 6. पैलिनोलॉजी: पैलिनोलॉजी मेंए पराग और बीजाणुओं का अध्ययन। परागकणों के वर्गीकरण लक्षणों में अच्छी संरचना, ध्रुवता, समरूपता आकार और अनाज का आकार शामिल है।
- एंजियोस्पर्म में परागकण दो प्रकार के होते हैं (ए) मोनोकोलपेट, (बी) ट्राइकोलपेट।
- मोनोकोलपेट परागकण नाव के आकार का होता है, इसमें एक लंबा जर्मिनल फ़रो और एक जर्मिनल एपर्चर होता है। ये आदिम द्विबीजपत्री की विशेषताएं हैं, जैसे कि पाइपेरासी और क्लोरैंथेसी बहुसंख्यक मोनोकोटाइलडॉन, साइकैड और बीज फर्म।
- 7. भ्रूणविज्ञान: भ्रूणजननए युग्मकजननए और भ्रूणए एंडोसोमए और बीज कोट के विकास और विकास के क्रमिक चरणों का भ्रूणविज्ञान अध्ययन। लगभग सभी स्तरों पर वर्गीकरण संबंधी समस्याओं को हल करने में साक्ष्य के भ्रूणीय टुकड़ों का उपयोग किया गया है और कई टैक्सों की संदिग्ध व्यवस्थित स्थिति को हल करने में मदद की गई है।
- 8. संख्यात्मक वर्गीकरणर: संख्यात्मक वर्गीकरण एक वर्गीकरण प्रणाली है। बहुभिन्नरूपी विश्लेषण के लिए संख्यात्मक वर्गीकरण विकसित किया गया है। बहुभिन्नरूपी विश्लेषण बहुभिन्नरूपी आँकड़ों के सिद्धांत पर आधारित हैए जिसमें एक समय में एक से अधिक सांख्यिकीय परिणाम चर का अवलोकन और विश्लेषण शामिल है। जीवों को एक वर्ण के आधार पर वर्गीकृत करें लेकिन एक ही समय में एक वर्गीकरण के दौरान हमेशा बहुत सारे वर्ण देखें। (कंप्यूटर का उपयोग करके) जिसे ऑपरेशनल टैक्सोनोमिक यूनिट्स ;व्न्द्ध भी कहा जाता है। एक संख्यात्मक वर्गीकरण का उद्देश्य उनके गुणों के व्यक्तिपरक मूल्यांकन का उपयोग करने के बजाय क्लस्टर विश्लेषण जैसे गणितीय सूत्र आधारित (एल्गोरिदम) का उपयोग करके एक वर्गीकरण बनाना है।

स्रोत: पुस्तकालय में उपलब्ध साहित्य और इंटरनेट विकिपीडिया

आभार

लेखक हमारे निदेशक डॉ ए. ए. माओ, भा.व.स. कोलकाता को उनके नैतिक समर्थन, प्रोत्साहनए सुविधाओं और मार्गदर्शन के लिए अपना हार्दिक धन्यवाद व्यक्त करते हैं।

पुष्पकृषि एवं वाणिज्यिक क्षमता युक्त ऑर्किड जातियों का भारतीय वनस्पति सर्वेक्षण, पूर्वी क्षेत्रीय केंद्र, शिलांग, मेघालय में बाह्य स्थल संरक्षण

छाया देवरी, डेविड एल. बियाते एवं एन. ओडियो

भारतीय वनस्पति सर्वेक्षण, शिलांग

1956 में भारतीय वनस्पति सर्वेक्षण, पूर्वी क्षेत्रीय केंद्र,शिलांग के स्थापना के समय से ही बाह्य स्थल संरक्षण हेतु अनेक रोचक सजीव पादप जातियों को संपूर्ण भारत से विशेषकर पूर्वोत्तर भारत से संग्रह कर उद्यान में लगाया जा रहा है | इस केंद्र में संरक्षित कुछ महत्वपूर्ण वंशो में ऐरेसी, एपोसायनेसी, बालसमिनेसी, बिगोनिएसी, डायोस्कोरिएसी, एरिकेसी, लिलिएसी, मालवेसी , मैग्नोलिएसी, नेपेंथेसी, पोएसी, वर्बीनेसी, जिंजिबरेसी आदि शामिल हैं | भारत से संग्रहित कुल 1256 जातियों एवं पूर्वोत्तर से संग्रहित 963 जातियों के अलावा इस केंद्र में 419 ऑर्किड जातियों का विविध संग्रह है |

अपने मनमोहक सौंदर्य के कारण ऑर्किड सजावट, बागवानी एवं पुष्पकृषि के लिए महत्वपूर्ण माने जाते हैं साथ ही इनका प्रयोग परंपरागत चिकित्सा पद्धति में भी किया जाता है | ये एकदम श्वेत से लेकर पीले, नीले, लाल, हरे, गुलाबी आदि रंग के होते हैं जो अत्यधिक आकर्षक लगते हैं, पुष्पों की लंबी जीवन अवधि एवं मधुर सुगंध के कारण इन जातियों का व्यापक पैमाने पर संकरण किया जाता है | यूरोप (नीदरलैंड), अमेरिका (कैलिफोर्निया), जापान एवं दक्षिण पूर्वी एशियाई देश (बैंकाक, सिंगापुर एवं थाइलैंड) में केंद्रित उत्पादन केंद्रों से इसका कुल व्यापार कई मिलियन डॉलर का है |वर्त्तमान में, अंतर्राष्ट्रीय पुष्प व्यापार में ऑर्किड की हिस्सेदारी 8 प्रतिशत है | अंतर्राष्ट्रीय पुष्प बाज़ार में सिम्बिडियम शीर्ष दस महत्वपूर्ण पुष्पकृषिजनित पादपों में से एक है एवं कुल कट फ्लावर उत्पादन में इसका योगदान 27 प्रतिशत है | भारतीय वनस्पति सर्वेक्षण, शिलांग एवं प्रयोगिक उद्यान,बडापानी में संग्रहित कुल 419 जातियों में से अनेक जातियों जैसे एरिडिस मल्टीफ्लोरम, एओडोरेटम, अरुणदिना ग्रामिनिफोलिआ, बल्बोफायलम, केलेंथे मसूका, कोएलोगाइन-कोरिम्बोसा, सिम्बिडियम एलोइफोलियम, सी.लोविएनम, सी. देवोनिएनम, सी. हूकेरिएनम, सी. लेंसिफोलियम, डेंड्रोबियम एफायलम, डी. नोबिल, डी. कृसांथम, डी. फार्मेरी, डी. डेंसीफ्लोरम, डी. मोस्चेटम, डी. फिम्ब्रिएटम, डी. जेंकिनसाई, पेफिओपेडिलम वेणुसटम, पी. स्पाइकेरिएनम,पी. हिर्सुटिसिनम, पी. इंसिग्नी, फेउस वालिचाई, प्लिओन प्रेइकॉक्स, रेनान्थेरा इमस्कूटिआना, राइनकोस्टायलिस रेटुसा, थुनिया आल्बा,वांडा क्रिस्टाटा, वांडा कोइरूलिया,वांडा कोएरूलिया को संकरण कार्यक्रमों में शामिल किया गया है | ऑर्किड की खेती के लिए प्राकृतिक रूप से क्षेत्र की जलवायु के उपयुक्त होने एवं सिक्किम तथा कुछ हद तक अरुणाचल प्रदेश एवं अन्य राज्यों में कुछ सफलता प्राप्त करने के बावजूद पूर्वोत्तर भारत में ऑर्किड की व्यावसायिक खेती का प्रसार अभी भी सिमित है | इस क्षेत्र में पुष्पकृषि योग्य ऑर्किड का बहुतायत प्रवर्धन सहायक जैवतकनीकी यंत्रों एवं परंपरागत विधियों के संयुक्त प्रयोग से किया जा सकता है साथ ही व्यावसायिक खेती के लिए गुणवत्तापूर्ण पादप सामाग्रियों के उत्पादन में भी सदुपयोग किया जा सकता है |वंश बल्बोफाइलम, कैलेंथे, सिम्बिडियम, डेंड्रोबियम, पेफिओपेडिलम एवं रेनेंथेरा से संबंधी कुल 27 जातियां जिन्हें कट फ्लावर गुण एवं गमलों में सजावट योग्य पादप के आधार पर ज्ञात हैं इनका बहुतायत एवं व्यावसायिक कृषि किया जा सकता है | उनके प्राकृतिक आवास के आधार पर कुछ पादपों को गमलों में इंडोर पादप के रूप में पांच सितारा होटलों, कार्यालयों, व्यावसायिक प्रतिष्ठानों आदि में लगाया जा सकता है |

इस लेख में आवास, पुष्पन एवं फलन,ऊंचाई, वितरण,उपयोग एवं छायाप्रतियों के साथ 27 जातियों का सही नामकरण प्रस्तुत है |

1. *बल्बोफायलम रोथ्सकिलडायएनम*: यह एक अधिपादप है जो समुद्र तल से 1200-1800 मी की ऊंचाई में मणिपुर, नागालैंड, सिक्किम, पश्चिम बंगाल, म्यंमार में पाया जाता है | इसका पुष्पन अक्टूबर-नवंबर में होता है और पुष्प 60 दिनों तक जीवित रह सकता है | इसे गमले में सजावटी पौधे के रूप में उपयोग किया जा सकता है |

2. *कैलेंथी मसूका*: यह एक स्थलीय पादप है जो समुद्र तल से 400-1500 मी की ऊंचाई में मणिपुर, मेघालय, मिज़ोरम, नागालैंड, अरुणाचल प्रदेश, सिक्किम, पश्चिम बंगाल, भूटान, नेपाल, श्रीलंका, चीन, म्यंमार, इंडोनेशिया, जापान, मलेशिया, थाईलैंड, इंडो-चीन में पाया जाता है | इसका पुष्पन मई-जून में होता है और पुष्प 60 दिनों तक जीवित रह सकता है | इसे गमले में सजावटी पौधे/कट फ्लावर के रूप में उपयोग किया जा सकता है |

3. *कोएलोगाइन क्रिस्टाटा*: यह एक अधिपादप है जो समुद्र तल से 1500-18 00 मी की ऊंचाई में असम, मणिपुर, मेघालय, नागालैंड, अरुणाचल प्रदेश, सिक्किम, पश्चिम बंगाल, हिमाचल प्रदेश, उत्तराखंड, बांगलादेश, भूटान, नेपाल, चीन, म्यंमार में पाया जाता है | इसका पुष्पन जनवरी-मई में होता है और पुष्प 150 दिनों तक जीवित रह सकता है | इसे गमले में सजावटी पौधे रूप में उपयोग किया जा सकता है |

4. *कोएलोगाइन पंकटुलाटा*: यह एक अधिपादप है जो समुद्र तल से 1500-2500 मी की ऊंचाई में मणिपुर, मेघालय, मिज़ोरम, नागालैंड, अरुणाचल प्रदेश, सिक्किम, पश्चिम बंगाल, बांगलादेश, भूटान, नेपाल, चीन, म्यंमार में पाया जाता है | इसका पुष्पन मई-जून में होता है और पुष्प 150 दिनों तक जीवित रह सकता है | इसे गमले में सजावटी पौधे/कट फ्लावर के रूप में उपयोग किया जा सकता है |

5. *सिम्बिडियम ईरीथ्रेयम*: यह एक स्थलीय पादप है जो समुद्र तल से 1400-2800 मी की ऊंचाई में असम, मणिपुर, मेघालय, मिज़ोरम, नागालैंड, अरुणाचल प्रदेश, सिक्किम, पश्चिम बंगाल, भूटान, नेपाल, चीन, म्यंमार में पाया जाता है | इसका पुष्पन सितंबर-नवंबर में होता है और पुष्प 90 दिनों तक जीवित रह सकता है | इसे गमले में सजावटी पौधे/कट फ्लावर के रूप में उपयोग किया जा सकता है |

6. *सिम्बिडियम इरिडायोड़ीज*: यह एक स्थलीय पादप है जो समुद्र तल से 900-2800 मी की ऊंचाई में मणिपुर, मेघालय, मिज़ोरम, नागालैंड, अरुणाचल प्रदेश, सिक्किम, पश्चिम बंगाल, उत्तराखंड, भूटान, नेपाल, चीन, म्यंमार, इंडो-चीन में पाया जाता है | इसका पुष्पन अक्टूबर-नवंबर में होता है और पुष्प 90 दिनों तक जीवित रह सकता है | इसे गमले में सजावटी पौधे/कट फ्लावर के रूप में उपयोग किया जा सकता है |

7. *सिम्बिडियम लेंसिफोलियम*: यह एक स्थलीय पादप है जो समुद्र तल से 500-2500 मी की ऊंचाई में असम, मणिपुर, मेघालय, मिज़ोरम, नागालैंड, अरुणाचल प्रदेश, सिक्किम, पश्चिम बंगाल, बांगलादेश,भूटान, नेपाल, चीन, म्यंमार, इंडोनेशिया, जापान, मलेशिया, पपुआ न्यू गुनिया, थाईलैंड में पाया जाता है | इसका पुष्पन जून-सितंबर में होता है और पुष्प 120 दिनों तक जीवित रह सकता है | इसे गमले में सजावटी पौधे/कट फ्लावर के रूप में उपयोग किया जा सकता है |

8. *सिम्बिडियम लोवियानम*: यह एक स्थलीय पादप है जो समुद्र तल से 800-2400 मी की ऊंचाई में नागालैंड, अरुणाचल प्रदेश, पश्चिम बंगाल, उत्तराखंड, चीन, म्यंमार,थाईलैंड में पाया जाता है | इसका पुष्पन फरवरी-अप्रैल में होता है और पुष्प 90 दिनों तक जीवित रह सकता है | इसे गमले में सजावटी पौधे/कट फ्लावर के रूप में उपयोग किया जा सकता है |

9. *सिम्बिडियम मास्टेरसाई*: यह एक स्थलीय पादप है जो समुद्र तल से 900-2500 मी की ऊंचाई में असम, मणिपुर, मेघालय, मिज़ोरम, नागालैंड, अरुणाचल प्रदेश, सिक्किम, पश्चिम बंगाल, बांगलादेश,भूटान, चीन में पाया जाता है | इसका पुष्पन अक्टूबर-नवंबर में होता है और पुष्प 60 दिनों तक जीवित रह सकता है | इसे गमले में सजावटी पौधे/कट फ्लावर के रूप में उपयोग किया जा सकता है |

10. *डेंड्रोबियम क्रिसोटोक्सम*: यह एक स्थलीय पादप है जो समुद्र तल से 500-1600 मी की ऊंचाई में असम, मणिपुर, मेघालय, मिज़ोरम, नागालैंड, त्रिपुरा, अरुणाचल प्रदेश, सिक्किम, बांगलादेश, चीन, म्यंमार, थाईलैंड, इंडो-चीन में पाया जाता है | इसका पुष्पन मई-जून में होता है और पुष्प 60 दिनों तक जीवित रह सकता है | इसे गमले में सजावटी पौधे/कट फ्लावर के रूप में उपयोग किया जा सकता है |

11. *डेंड्रोबियम क्रेपिडाटम*: यह एक अधिपादप है जो समुद्र तल से 1000-1800 मी की ऊंचाई में असम, मणिपुर, मेघालय, मिज़ोरम, नागालैंड, अरुणाचल प्रदेश, सिक्किम, पश्चिम बंगाल, उत्तराखंड, उड़ीसा, गोवा, कर्णाटक, केरल, महाराष्ट्र, तमिलनाडु, बिहार,

झारखंड, छत्तीसगढ़, बांगलादेश, भूटान, नेपाल, चीन, म्यंमार, थाईलैंड, इंडोनेशिया में पाया जाता है | इसका पुष्पन मार्च-मई में होता है और पुष्प 120 दिनों तक जीवित रह सकता है | इसे गमले में सजावटी पौधे/कट फ्लावर के रूप में उपयोग किया जा सकता है |

12. *डेंड्रोबियम डेंसीफ्लोरम*: यह एक अधिपादप है जो समुद्र तल से 400-1500 मी की ऊंचाई में असम, मणिपुर, मेघालय, मिज़ोरम, नागालैंड, अरुणाचल प्रदेश, सिक्किम, पश्चिम बंगाल, उत्तराखंड, उड़ीसा, गोवा, कर्णाटक, केरल, महाराष्ट्र, तमिलनाडु, बिहार, झारखंड, छत्तीसगढ़, बांगलादेश, भूटान, नेपाल, चीन, म्यंमार, थाईलैंड में पाया जाता है | इसका पुष्पन अप्रैल-जून में होता है और पुष्प 60 दिनों तक जीवित रह सकता है | इसे गमले में सजावटी पौधे/कट फ्लावर के रूप में उपयोग किया जा सकता है |

13. *डेंड्रोबियम नोबिल*: यह एक अधिपादप है जो समुद्र तल से 500-1700 मी की ऊंचाई में असम, मणिपुर, मेघालय, मिज़ोरम, नागालैंड, अरुणाचल प्रदेश, सिक्किम, पश्चिम बंगाल, बांगलादेश, भूटान, नेपाल, चीन, म्यंमार, इंडो-चीन में पाया जाता है | इसका पुष्पन मार्च-मई में होता है और पुष्प 60 दिनों तक जीवित रह सकता है | इसे गमले में सजावटी पौधे/कट फ्लावर के रूप में उपयोग किया जा सकता है|

14. *डेंड्रोबियम प्राइमुलिनम*: यह एक अधिपादप है जो समुद्र तल से 200-1000 मी की ऊंचाई में असम, मणिपुर, मेघालय, मिज़ोरम, नागालैंड, अरुणाचल प्रदेश, सिक्किम, पश्चिम बंगाल, बांगलादेश, भूटान, नेपाल, चीन, म्यंमार, इंडो-चीन में पाया जाता है | इसका पुष्पन मार्च-मई में होता है और पुष्प 90 दिनों तक जीवित रह सकता है | इसे गमले में सजावटी पौधे/कट फ्लावर के रूप में उपयोग किया जा सकता है |

15. *डेंड्रोबियम थाग्रसिफ्लोरम*: यह एक अधिपादप है जो समुद्र तल से 1000-1800 मी की ऊंचाई में मणिपुर, मेघालय, मिज़ोरम, नागालैंड, अरुणाचल प्रदेश, सिक्किम, चीन, म्यंमार, थाईलैंड ,इंडो-चीन में पाया जाता है | इसका पुष्पन अप्रैल-मई में होता है और पुष्प 60 दिनों तक जीवित रह सकता है | इसे गमले में सजावटी पौधे/कट फ्लावर के रूप में उपयोग किया जा सकता है |

16. *डेंड्रोबियम वार्डिएनम*: यह एक अधिपादप है जो समुद्र तल से 1300-1900 मी की ऊंचाई में मणिपुर, मेघालय, मिज़ोरम, नागालैंड, त्रिपुरा, सिक्किम, भूटान, नेपाल, चीन, म्यंमार, थाईलैंड, इंडो-चीन में पाया जाता है | इसका पुष्पन अप्रैल-मई में होता है और पुष्प 60 दिनों तक जीवित रह सकता है | इसे गमले में सजावटी पौधे/कट फ्लावर के रूप में उपयोग किया जा सकता है |

17. *पेफिओपेडिलम फैरीएनम*: यह एक स्थलीय पादप है जो समुद्र तल से 500-1700 मी की ऊंचाई में अरुणाचल प्रदेश, सिक्किम, पश्चिम बंगाल, भूटान में पाया जाता है | इसका पुष्पन अक्टूबर- दिसंबर में होता है और पुष्प 90 दिनों तक जीवित रह सकता है | इसे गमले में सजावटी पौधे/कट फ्लावर के रूप में उपयोग किया जा सकता है |

18. *पेफिओपेडिलम हिर्सुटिसिमम*: यह एक स्थलीय पादप है जो समुद्र तल से 1000-1500 मी की ऊंचाई में मणिपुर, मेघालय, मिज़ोरम, नागालैंड, पश्चिम बंगाल, चीन, म्यंमार, थाईलैंड, इंडो-चीन में पाया जाता है | इसका पुष्पन अप्रैल-मई में होता है और पुष्प 60 दिनों तक जीवित रह सकता है | इसे गमले में सजावटी पौधे/कट फ्लावर के रूप में उपयोग किया जा सकता है |

19. *पेफिओपेडिलम इंसिग्नी*: यह एक स्थलीय पादप है जो समुद्र तल से 1200-1500 मी की ऊंचाई में मणिपुर, मेघालय, नागालैंड, अरुणाचल प्रदेश, पश्चिम बंगाल, बांगलादेश, चीन में पाया जाता है | इसका पुष्पन अक्टूबर-दिसंबर में होता है और पुष्प 90 दिनों तक जीवित रह सकता है | इसे गमले में सजावटी पौधे/कट फ्लावर के रूप में उपयोग किया जा सकता है |

20. *पेफिओपेडिलम स्पाइसेरिएनम*: यह एक स्थलीय पादप है जो समुद्र तल से 1000-1400 मी की ऊंचाई में मणिपुर, मिजोरम, चीन, म्यंमार में पाया जाता है | इसका पुष्पन अक्टूबर-दिसंबर में होता है और पुष्प 90 दिनों तक जीवित रह सकता है | इसे गमले में सजावटी पौधे/कट फ्लावर के रूप में उपयोग किया जा सकता है |

21. *पेफिओपेडिलम वेणुसटम*: यह एक स्थलीय पादप है जो समुद्र तल से 1200-2000 मी की ऊंचाई में मेघालय, मणिपुर,

अरुणाचल प्रदेश, सिक्किम, पश्चिम बंगाल, बांगलादेश, भूटान, नेपाल, चीन, में पाया जाता है | इसका पुष्पन अक्टूबर-दिसंबर में होता है और पुष्प 150 दिनों तक जीवित रह सकता है | इसे गमले में सजावटी पौधे/कट फ्लावर के रूप में उपयोग किया जा सकता है |

22. *पेफिओपेडिलम विलोसम*: यह एक स्थलीय पादप है जो समुद्र तल से 1200-1800 मी की ऊंचाई में असम, मणिपुर, मिजोरम, चीन, म्यंमार, थाईलैंड, इंडो-चीन में पाया जाता है | इसका पुष्पन अक्टूबर-फरवरी में होता है और पुष्प 150 दिनों तक जीवित रह सकता है | इसे गमले में सजावटी पौधे/कट फ्लावर के रूप में उपयोग किया जा सकता है |

23. *फैउस्टैंकर विल्लीए*: यह एक स्थलीय पादप है जो समुद्र तल से 700-1800 मी की ऊंचाई में असम, मणिपुर, मेघालय,मिजोरम, नागालैंड, अरुणाचल प्रदेश, त्रिपुरा, सिक्किम, पश्चिम बंगाल, उत्तराखंड,केरल, बांगलादेश, भूटान, नेपाल, श्रीलंका,चीन, म्यंमार, थाईलैंड, इंडोनेशिया, जापान, मलेशिया, न्यू गुनिया, प्रशांत महासागर द्विपों, ऑस्ट्रेलिया में पाया जाता है | इसका पुष्पन अप्रैल-अगस्त में होता है और पुष्प 150 दिनों तक जीवित रह सकता है | इसे गमले में सजावटी पौधे/कट फ्लावर के रूप में उपयोग किया जा सकता है |

24. *रेनेंथेरा इमस्कूटियाना*: यह एक अधिपादप है जो समुद्र तल से 500-1500 मी की ऊंचाई में अरुणाचल प्रदेश, मणिपुर, मिज़ोरम, नागालैंड, चीन, इंडो-चीन में पाया जाता है | इसका पुष्पन मई-जुलाई में होता है और पुष्प 90 दिनों तक जीवित रह सकता है | इसे गमले में सजावटी पौधे/कट फ्लावर के रूप में उपयोग किया जा सकता है |

25. *थुनिया आल्बा* प्रभेद *मार्शलियाना*: यह एक अधिपादप है जो समुद्र तल से 1000-2000 मी की ऊंचाई में मणिपुर, मिज़ोरम, चीन, म्यंमार, थाईलैंड में पाया जाता है | इसका पुष्पन मई-जून में होता है और पुष्प 60 दिनों तक जीवित रह सकता है | इसे गमले में सजावटी पौधे/कट फ्लावर के रूप में उपयोग किया जा सकता है |

26. *वांडा कोइरूलिया*: यह एक अधिपादप है जो समुद्र तल से 500-1500 मी की ऊंचाई में मणिपुर, मेघालय, मिज़ोरम, नागालैंड, अरुणाचल प्रदेश, सिक्किम, चीन, म्यंमार, थाईलैंड में पाया जाता है | इसका पुष्पन जुलाई-नवंबर में होता है और पुष्प 150 दिनों तक जीवित रह सकता है | इसे गमले में सजावटी पौधे/कट फ्लावर के रूप में उपयोग किया जा सकता है |

27. *वांडा क्रिस्टाटा*: यह एक अधिपादप है जो समुद्र तल से 1000-2000 मी की ऊंचाई में मणिपुर, मेघालय, मिज़ोरम, नागालैंड, अरुणाचल प्रदेश, सिक्किम, पश्चिम बंगाल, हिमाचल प्रदेश, उत्तराखंड, बांगलादेश, भूटान, नेपाल, चीन, म्यंमार, इंडो-चीन में पाया जाता है | इसका पुष्पन जुलाई-नवंबर में होता है और पुष्प 150 दिनों तक जीवित रह सकता है | इसे गमले में सजावटी पौधे/कट फ्लावर के रूप में उपयोग किया जा सकता है |

एक कदम अंडमान तथा निकोबार द्वीप समूह के संकटग्रस्त पौधों की संरक्षण की ओर

रेशमा लकड़ा एवं पुष्पा कुमारी

भारतीय वनस्पति सर्वेक्षण, कोलकाता

अंडमान तथा निकोबार द्वीप समूह भौगोलिक दृष्टि से दक्षिण पूर्व एशिया का हिस्सा है जो कि बंगाल की खाड़ी के दक्षिण में हिन्द महासागर में स्थित है। अंडमान और निकोबार द्वीप समूह लगभग 572 छोटे बड़े द्वीपों से मिलकर बना है, जिनमें सिर्फ कुछ ही द्वीपों पर लोग रहते हैं। यह इंडोनेशिया के आचेह के उत्तर में 150 किमी. पर स्थित है, तथा अंडमान सागर इसे थाईलैंड और म्यांमार से अलग करता है। दो प्रमुख द्वीप समूहों से मिलकर बने इस द्वीप समूह को 10° उ. अक्षांश पृथक करती है, जिसके उत्तर में अंडमान द्वीप समूह और दक्षिण में निकोबार द्वीप समूह स्थित हैं। इस द्वीप समूह के पूर्व में अंडमान सागर और पश्चिम में बंगाल की खाड़ी स्थित है।

इन द्वीप समूहों का 86% हिस्सा वनो में सिमटा है, यही कारण है कि इन द्वीप समूहों को वन्यजीव का एक प्रमुख घरोहर माना जाता है। इनमे उष्णकटिबंधीय वर्षावन, सदाबहार वन, उष्णकटिबंधीय अर्ध सदाबहार वन, नम पर्णपाती वन, दलदल वन, घास स्थल आदि तरह के वन शामिल है। विभिन्न प्रकार के वनो के कारण यहाँ विभिन्न प्रकार की वनस्पतियां प्रचुरता मे पायी जाती हैं। इनमे से अधिकांश जातियां स्थानिक है और कुछ केवल प्रतिबंधित क्षेत्र मे ही पायी जाती हैं, जिस कारण किसी छोटे से क्षेत्र के विनाश से वहाँ के वन्यजीव खतरे मे पड़ जाते हैं। यहाँ पर 4 वंश और लगभग 300 जाति के पौधे स्थानिक है, जिनमे से कुछ इस प्रकार है - टेरोकार्पस दल्बेर्जिओदेस, मंजिफेरा निकोबरिका, मसुआ मनी, मिलिउसा अन्दमानिका, सलासिया निकोबरिका, वेरनोनिया अन्दमानिका, ग्रेविया इन्दंदामानिका, कोदिओकर्पौस अन्दमानिका, लीया ग्रंदिफोलिया, हिप्पोक्रातेया अन्दमानिका, क्ष्तन्द्रोएम्य निकोबरिका, सेरोपिजिया अन्दमानिका आदि। कुछ संकटग्रस्त पौधे इस प्रकार है, अर्ताबोत्रिस निकोबरिकास, अमोर्मोफ्ल्लास लोंगिस्त्य्लास, बेन्तिन्किया निकोबरिका, केलामस दिलाकेरातस, रोपलोब्लास्ते औग्स्ता, कोरथाल्सिया रोगर्सी, साइजिजियम मानी, पिन्नंगा अन्दामानेंसिस, वेरनोनिया अन्दमानिका आदि। इन द्वीप समूहों की संकटग्रस्त वनस्पतियों के कुछ महत्वपूर्ण जातियों में बेन्तिन्किया निकोबारिका, हबेनेरिया अन्दमानिका, रोपलोब्लास्ट औगस्ता, डेनडरोबियम तेंयुकुले, गिन्नोलोया अन्दमानिका, गार्सीनिया किंगी, वेंडलेंडिया अन्दमानिका, मेलेओला अन्दमानिका, एलोफिल्ला अन्दमानिका आदि मुख्य हैं।

संकटग्रस्त जातियों के संरक्षण हेतु अंतर्राष्ट्रीय प्रकृति संरक्षण संगठन (आई.यू.सी.एन.), जैव विविधता के संरक्षण तथा संकटग्रस्त प्रजातियों के संरक्षण स्थिति के अनुसार लालसूचि तैयार करता है। आई.यू.सी.एन. द्वारा 9 निर्धारित श्रेणियाँ है- विलुप्त, वन-विलुप्त, घोर-संकटग्रस्त, संकटापन्न, असुरक्षित, निकट-संकट, संकटमुक्त, आंकडो का अभाव, और अनाकलित। संरक्षण स्थिति के आधार पर किसी जाति को लाल सूचि के 9 मे से एक श्रेणी मे रखा जाता है। इनमे से तीन श्रेणियाँ- घोर-संकटग्रस्त, संकटापन्न, असुरक्षित व संकटग्रस्त श्रेणी मे शामिल है।

जैव प्राधोगिकी विभाग की एक परियोजना के अंतर्गत यह संभव हो पाया कि हमने अंडमान तथा निकोबार द्वीप समूह मे 4 संकटग्रस्त पौधों को अलग-अलग तरीको से अंकुरित करके उन्हीं के अनुकूल आवासों पर रोपण किया।

संरक्षण हेतु 4 पौधों कि जातियां शामिल की गई- बेन्तिन्किया निकोबरिका (कुर्ज) बेक्क. रोपलोब्लास्ते औग्स्ता, (कुर्ज) एच.ई.मूर, सिजोस्ताकियम कुर्जी (मुनरो) आर.बी.मजुमदार और डाइनोक्लोआ अन्दमानिका कुर्ज। इन गतिविधियो को सही तौर से करने के लिए हमने इकोलोजिकल निच मोडल्लिंग मैप (मानचित्र) को शामिल किया, जिसके द्वारा हमने इन पौधों के अनुकूल स्थानो को चिन्हित किया। बेन्तिन्किया निकोबरिका और रोपलोब्लास्ते औग्स्ता ताड की जाति से है, जो कि अंडमान द्वीप समूह के स्थानिक है, जबकि सिजोस्ताकियम

कुर्जी और डाइनोक्लोआ अन्दमानिका बांस की जाति से है और वह निकोबार द्वीप समूह के स्थानिक है।

इस दौरान इन सभी पौधों की घटती संख्या का कारण, पौधे की संरक्षण स्थिति, क्षेत्र वितरण, आबादी का अध्ययन किया गया और वहाँ की जनजातियों व स्थानीय लोगो से इन पौधों के सन्दर्भ मे जानकारी ली गई।

संकटग्रस्त जातियों के वन्य अवस्था मे कमी आने के कई कारण पाए गए। बहुत से द्वीपो में यह देखा गया है कि वहाँ के वन्यजीव स्थानिक व छोटे प्रतिबंधित क्षेत्र मे ही पाए जाते है। इन द्वीपो मे कई सारे पौधों के संकटग्रस्त होने के और कई सारे कारण है जैसे प्राकृतिक आपदा मे - सुनामी, बाढ़, भूकंप, ज्वालामुखी आदि तथा मानव द्वारा अनुचित लाभ व नष्ट करना, मंद प्रजनन क्षमता आदि शामिल है। इन सभी पर यह प्रभाव सीधे या फिर परोक्ष रूप से पड़ता है। कुछ वन्यजीव जो सिर्फ एक छोटे से क्षेत्र मे ही पाये जाते हैं, वह कभी भी किसी प्राकृतिक आपदा के प्रभाव के कारण संकटग्रस्त वर्ग से लुप्त की कगार मे या फिर लुप्त हो सकते हैं। इसलिए यह जरुरी है कि हम इन संकटग्रस्त पौधों को लुप्त होने से बचायें और इनके संरक्षण हेतु आगे आयें।

इन पौधों को संकटग्रस्त स्थिति से उबारने के लिए पुनरुत्पादन ही एक ऐसा तरीका है जिससे इनकी संख्या को वन्य अवस्था मे बढा कर एक ही नहीं बल्कि अन्य द्वीपो मे संरक्षित किया जा सकता है। इसलिए हमने इन पौधों की वन्य अवस्था मे आबादी को बड़ाने के लिए हज़ारो की संख्या मे अंकुरित कर उन पौधों के अनुकूल स्थानो मे लगाने के लिए तैयार किया।

इन सभी पौधों की प्रजातियों को अंकुरित करने के लिए कायिक प्रवर्धन और बीज अंकुरण के विभिन्न प्रयोग किए गए और उसे मानकीकृत किया गया। हजारों पौधे अंकुरित कर ग्रीन हाउस पर नियंत्रित स्थितियो मे रखे गये। पौधों की रोपण का अनुकूल स्थान इकोलोजिकल नीच मोडलिंग मैप-मानचित्र से लिए गए और पौधों के लिए अनुकूल स्थानो का चयन किया गया। सभी अंकुरित पौधों को अनुकूल समय देख कर वन विभाग की सहायता से उचित स्थान पर रोपण किया गया। पौधों के रोपण के पश्चात् समय-समय पर निगरानी की गई जिससे कि पौधों का विकास, वन्य अवस्था आदि का पता चले और उसपर ध्यान दिया जा सके। लोगो मे इन पौधों को बचाने हेतु जागरूकता कार्यक्रम किए गए जिसमे स्थानीय लोग, जनजातियों और छात्रों को शामिल किया गया। समाचार पत्रों मे भी विश्व पर्यावरण दिवस, जैव-विविधता दिवस, वन महोत्सव दिवस आदि पर जागरूकता हेतु प्रकाशित की गई और पौधों का रोपण किया गया।

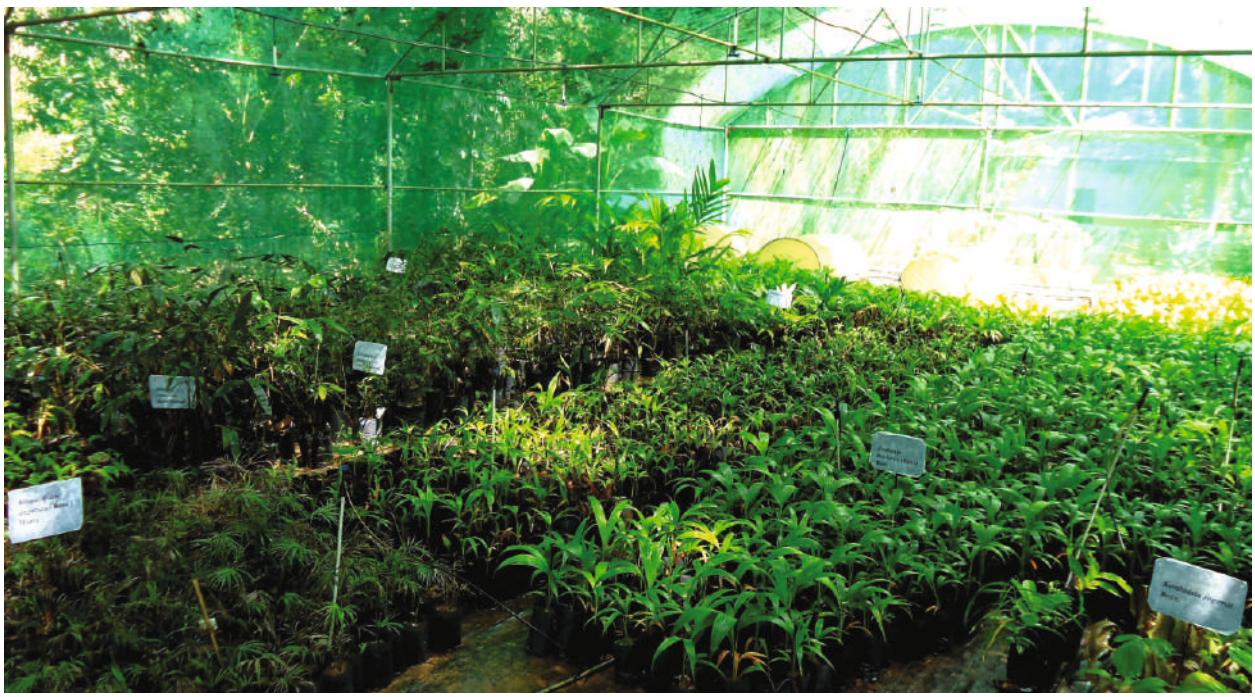

ग्रीनहाउस में अंकुरित किए गए पौधे

औषधीय आकाश बेली परजीवी की दो नई जातियां

लाल जी सिंह, गौतम अनुज एक्का सी.पी. विवेक एवं विष्णु चरन दे

भारतीय वनस्पति सर्वेक्षण, अण्डमान एवं निकोबार क्षेत्रीय केन्द्र, पोर्ट ब्लेयर

हाल ही के वर्षों में अंडमान व निकोबार द्वीप समूह से दो नई आकाश बेली परजीवी बंडा जातियां की खोज की गई है। ये जातियाँः स्कुर्रुला परमजिताई एल. जे. सिंह और मैक्रोसोलेन अंडमानेनसिस एल. जे. सिंह है जिसका विज्ञान जगत के अंतर्गत स्थानिक जाति के रूप में अंडमान का नाम भोगोलिक वितरण के स्थान के रूप में विश्व के मानचित्र पर दर्ज है। इन जातियों में अन्य बंडा जातियों की भांति औषधीय गुणों की अपार संभावनाओं से भरपूर लक्षण विद्यमान है। अंडमान और निकोबार 572 द्वीपों का समूह है जो भारत ही नहीं बल्कि विश्व स्तर पर अपनी अद्वितीय जैव भौगोलिक प्राकृतिक पारिस्थितिक तंत्र की लिए जाना जाता है। स्कुर्रुला परमजिताई जाति का नामकरण भारतीय वनस्पति सर्वेक्षण, पर्यावरण, वन एवं जलवायु परिवर्तन मंत्रालय के निदेशक और वैज्ञानिक डॉ परमजीत सिंह के सम्मान में प्लांट टैक्सोनोमी के क्षेत्र में व्यापक योगदान के लिए किया गया है एंव मैक्रोसोलेन अन्दामानेंसिस का नामकरण इसके प्राकृतिक भौगोलिक आवास स्थान अंडमान द्वीप समूह के सम्मान में किया है। इन जातियों का विस्तृत उल्लेख इंटरनेशनल जर्नल: इंटरनेशनल जर्नल ऑफ लाइफ साइंसेज तैवानिया 60 (3): 123 -128 एवेम इंडियन जर्नल ऑफ फॉरेस्ट्री 36 (1): 55-59 में क्रमशः प्रकाशित है। ये दोनों जातियों अन्य बंडा जातियों से कायिक एवेम पुष्पि अंगों की आकारकीय रचना में अलग है और विज्ञान जगत के लिए एक नई खोज के रूप में स्थान लिया है। बंडा जातियों का प्रसार पक्षियों द्वारा होता है जिसका फल पक्षियों के लिए एक प्रमुख खाद्य श्रोत है। इसका बीज पोषक वृक्षों तक पक्षियों के वमन के माध्यम से पहुचाया जाता है और अंकुरित हो कर नवीन पादप परजीवी के रूप में पनपता है। भारत में इन अर्ध परजीवी पौधों का विकाश एवेम वितरण खुले वातावरण एवेम जंगलों की नमी युक्त बाहरी परिधि में पाए जाने वाले वृक्षों पर देखने को मिलता है। इनके द्वारा मेजबान वृक्षों का चयन (परजीवीकरण) एक अवसरवादी प्रक्रिया द्वारा होती है जो उपयुक्त समय और स्थान पर निर्भर करता हैं।

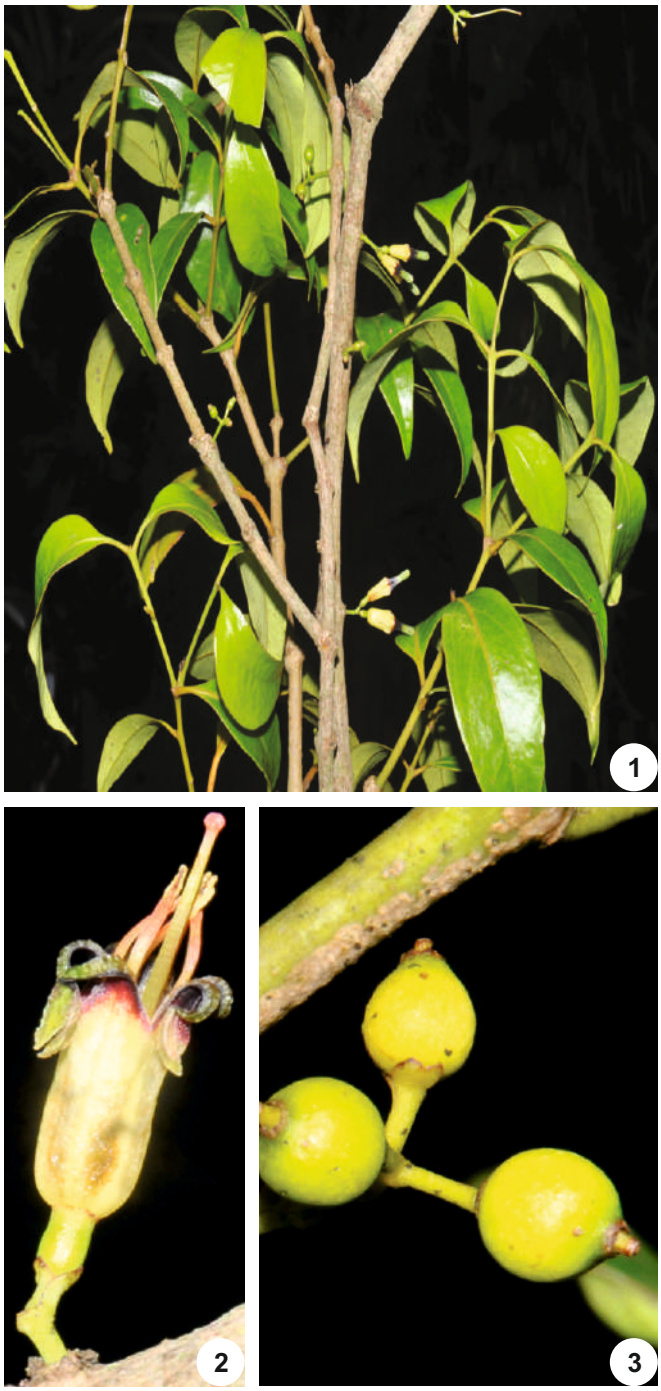

मैक्रोसोलेन अंडमानेनसिस एल. जे. सिंहः 1. टहनी, 2. पुष्प, 3. फल.

स्कुर्ला परमजिताई एल. जे. सिंहः 4. टहनी, 5. पुष्प, 6. फल.

धरती पर विकास प्रक्रिया के दौरान इन परजीवी पौधों का विकाश स्वतंत्र रूप से पुष्पीय पोधों की महत्वपूर्ण कड़ी के रूप में देखने को मिलता है जिसका भोगोलिक वितरण अंटार्टिका को छोड़कर पूरी दुनिया में देखने को मिलता है। अन्तर्राष्ट्रीय स्तर पर अब तक प्राप्त आकड़ो के आधार पर सम्पूर्ण पुष्पीय पादप जगत का 1: भाग इन बंडा परजीवी के होने का प्रलेख मिलता है। अब तक 1400 के करीब बंडा जातियों की खोज की जा चुकी है। इनकी अधिकांश जाति पारिस्थितिकी और आर्थिक रूप से महत्वपूर्ण साबित हुई है। विभिन्न स्वास्थ्य समस्याओं के निदान के लिए एक औषिधीय श्रोत के रूप में लाभकारी पाया गया है जिसका उल्लेख भारत में ही नहीं बल्कि वैश्विक स्तर पर औषधीय अध्ययनों में दर्ज की गई वैज्ञानिक जानकारी के द्वारा प्रमाणित है। इनका उपयोग तनाव प्रेरित स्वास्थ्य समस्याओं और प्राकृतिक एंटीऑक्सीडेंट के संभावित स्रोतों के रूप में उपयोगी सिद्ध हो रहा है जो आज एक जातीय औषधीय प्लांट्स के रूप में अपनी पहचान बनाए हुए हैं। विश्व के अन्य देशों की भांति अंडमान से खोजी गई इन जातिओं में भी औषधीय गुणों की अपार संभावनाओं से भरपूर लक्षण विद्यमान है।

वंडा कुल की जातियां सामान्तया अर्ö परजीवी रूप में विशेषकर खुले स्थानों में पाए जाने वाले वृक्षों के उपर पाई जाती हैं। वर्तमान में ऐसे आवासीय वृक्षों की सिमटती जनसंख्या इनके अस्तित्व के लिए चिंताजनक विषय हैं। जिसके लिए संवेदनशील एंव सक्रिय पहल की आवश्यकता हैं।

बिलिगिरी रंगास्वामी मंदिर (बीआरटी) वन्यजीव अभयारण्य की जैव विविधता

जे. जयंथी एवं जीवन सिंह जलाल

भारतीय वनस्पति सर्वेक्षण, कोलकाता

कर्नाटक राज्य को सबसे शानदार और विविध वनों से प्रकृति द्वारा नवाजा गया है। यह राज्य अपने विविध जलवायु, स्थलाकृति और मिट्टी के कारण भारत में अत्यधिक जैव विविधता समृद्ध क्षेत्रों में से एक माना जाता है। इस राज्य में फूलों के पौधों की लगभग 4500 जातियां हैं, जिनमें से कई इस क्षेत्र के लिए स्थानिक हैं। कर्नाटक में 5 राष्ट्रीय उद्यान और 30 वन्यजीव अभयारण्य हैं। अन्य अभयारण्य की तुलना में बिलिगिरी रंगास्वामी मंदिर (बीआरटी) वन्यजीव अभयारण्य का एक विशिष्ट स्थान है क्योंकि यह अभयारण्य पूर्वी घाट और पश्चिमी घाट को जोड़ने वाला एक महत्वपूर्ण क्षेत्र है। इस विशिष्टता के कारण यहां पौधों की विविधता और पशु विविधता बहुत अधिक है। यह अभयारण्य राज्य के प्रसिद्ध मैसूर शहर के पास स्थित है। इसे भारत सरकार द्वारा वर्ष 1974 में वन्यजीव संरक्षण अधिनियम 1972 के तहत वन्यजीव अभयारण्य के रूप में अधिसूचित किया गया था। इसके अलावा इसे बाघों की आबादी की रक्षा के लिए राष्ट्रीय बाघ संरक्षण प्राधिकरण द्वारा टाइगर रिजर्व के रूप में भी घोषित किया गया है। वर्तमान में इस वन्य जीव अभयारण्य/बाघ अभयारण्य का क्षेत्रफल लगभग 574.82 वर्ग किमी है। इस अभयारण्य की पर्वत श्रृंखलाएं उत्तर-दक्षिण दिशा की ओर 600 से 1800 मीटर की ऊंचाई के बीच है। सबसे ऊंची पहाड़ी कटारीबेट्टा है, जिसकी ऊंचाई 1800 मीटर है। ये पर्वत श्रृंखलाएं दक्षिण-पश्चिम मानसून और उत्तर-पूर्वी मानसून दोनों के दौरान अत्यधिक वर्षा प्राप्त करते है।

इस वन्यजीव अभयारण्य को बिलिगिरी रंगन पहाड़ियों के रूप में भी जाना जाता है जो कि यहां पर स्थापित एक विशाल सफेद चट्टान में भगवान रंगास्वामी (विष्णु) के एक प्राचीन मंदिर के कारण यह नाम दिया गया है। कन्नड़ भाषा में 'बिलिगिरी' का अर्थ सफेद चट्टान होता है। यहां पर रहने वाले सोलिगा जनजाति द्वारा लगभग पांच सौ वर्षों से भगवान रंगास्वामी की पूजा की जाती है। इसलिए इस स्थान को धार्मिक स्थल के लिए भी जाना जाता है। जैवभौगोलिक दृष्टि से अभयारण्य की पर्वत श्रृंखलाएं अनोखी हैं क्योंकि इनका विस्तार पश्चिमी घाट से उत्तर-पूर्व दिशा की ओर है और जो पूर्वी घाट से मिलती है। जिसके के कारण इस अभयारण्य की वनस्पतियां मुख्यतः पश्चिमी घाट से समानता रखती है और कुछ पूर्वी घाट से। उदाहरण के तोर पर *मेमेसिलोन टैल्बोटियनम* और *मेमेसिलोन लशिंग्टनी* जो पश्चिमी घाट और पूर्वी घाट दोनों की विशिष्ट जातियां हैं।

विविध जलवायु परिस्थितियाँ तथा पहाड़ों की अलग-अलग ऊंचाई में भिन्नता के कारण इस अभयारण्य में विभिन्न प्रकार के वन पाए जाते हैं जैसे की झाड़ीदार जंगल, शुष्क पर्णपाती जंगल, सदाबहार जंगल और शोला जंगल। एक छोटे से क्षेत्र के भीतर इस तरह के विविध पारिस्थितिकी तंत्र की उपस्थिति इस अभयारण्य की विशेषता है।

इस वन्यजीव अभयारण्य के उच्च पर्वतीय क्षेत्रों में घास के मैदानों के बीच घाटियों में शोला वन पाए जाते हैं जो कि आमतौर पर पर्वतीय घास के मैदान को एक दूसरे से अलग कर देते हैं। शोला वन में पाए जाने वाले पेड़ छोटे होते हैं और उनकी कई शाखाएँ होती हैं। आम तौर पर, पत्ते आकार में छोटे और अमृदु होते हैं। तरुण पत्ते लाल रंग के होते हैं और परिपक्वता पर अलग-अलग रंगों में बदल जाते हैं, यह शोला वनों की एक प्रमुख विशेषता है। पर्णपाती वन इस अभयारण्य के प्रमुख वनों मे से एक है जो 1300 मीटर के नीचे पाए जाते हैं। उत्तरी और पूर्वी ढलानों के साथ 700 मीटर के नीचे शुष्क स्थिति के कारण झाड़ीदार वन पाए जाते हैं।

इस अभयारण्य के महत्व को ध्यान में रखते हुए भारतीय वनस्पति सर्वेक्षण संस्थान ने इस अभयारण्य के पौधों का सूचीबद्ध किया। सर्वे के दौरान करीब 1300 जातियों को सूचीबद्ध किया गया। यहां फैबेसी, ऑर्किडेसी, पोएसी, एस्टेरसि, ऐकैंथेसी, लैमियेसी, रूबियेसी,

मालवेसी, यूफोरबियेसी, साइपरेसी और एपोसायनेसी प्रमुख कुल हैं।

इस अध्ययन में हमने पाया कि झाड़ीदार वनों में प्रमुख पौधे *एकेसिया चुंद्रा*, *क्लोरोक्सिलॉन स्विटेनिया*, *डायोस्पाइरस मेलेनोक्सिलॉन*, *बुकनिया एक्सिलारिस* आदि हैं।

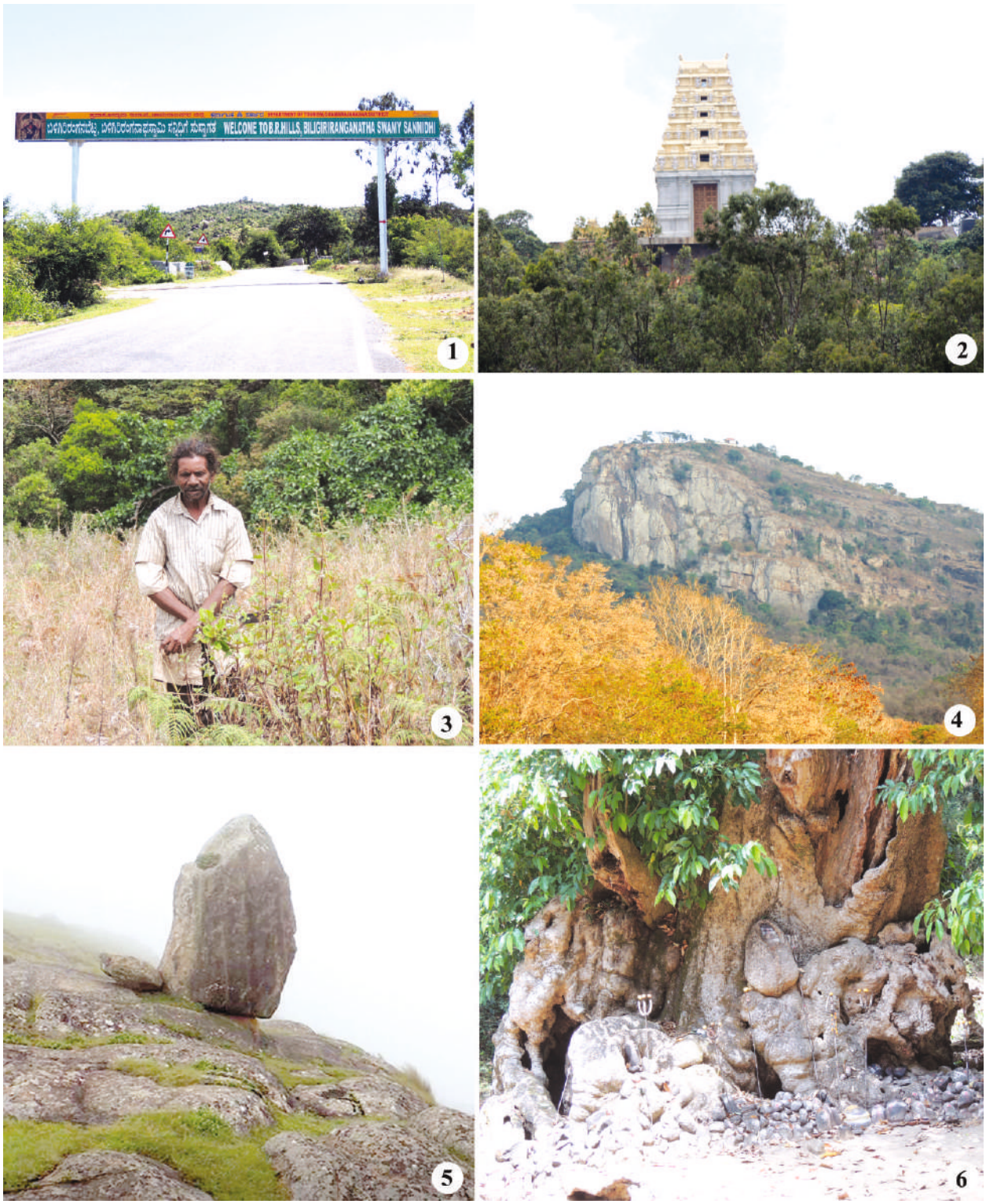

1. येलंदूर से बीआरटी का प्रवेश द्वार 2. बिलिगिरिरंगन मंदिर का दृश्य 3. सोलिगा जनजाति 4. बिलिगिरिरंगन पहाड़ियों का दृश्य 5. होन्नेमेटी शिला 6. डोड्डासम्पिगे (मैगनोलिया चंपाका)- एक पवित्र वृक्ष

शुष्क पर्णपाती जंगलों में प्रमुख पौधे *एनोगेसस लैटिफोलिया*, *एरिथ्रिना स्ट्रिक्टा*, *स्टरकुलिया यूरेन्स* आदि हैं। नम पर्णपाती जंगलों में आम पौधे हैं *टर्मिनालिया बेलेरिका*, *टर्मिनालिया क्रेनुलाटा*, *टेरोकार्पस मार्सुपियम*, *केरिया आर्बोरिया*, *रेडार्माचेरा जाइलोकार्पा*, *सैपिंडस लॉरीफोलियस*, *किडिया कैलीसीना* आदि।

सदाबहार और शोला वनों में *पर्सिया मैक्रान्था*, *लिटसी डेक्कनेंसिस*, *मिशेलिया चंपाका*, *एलियोकार्पस ट्यूबरकुलैटस*, *एलियोकार्पस सेराटस*, आदि जातियों का प्रभुत्व है।

वहां रहने वाले सॉलिगा जनजातियों द्वारा *वर्नोनिया अर्बोरिया* जाति के पौधे के फूल के बारे में एक दिलचस्प कहानी है। उनका मानना है कि जिस वर्ष पूर्ण रूप से खिलता है तो यह दर्शाता है कि उस वर्ष मानसून सामान्य रहेगा और जिस वर्ष कम फूल देगा उस वर्ष के दौरान मानसून सामान्य नहीं रहेगा।

सर्वेक्षण के दौरान इस अभयारण्य में कई स्थानिक जातियों का भी सूचीबद्ध किया गया। उदाहरण के लिए कुछ स्थानिक जातियां जैसे कि *एक्टिनोडाफने लॉसोनी*, *एंड्रोग्राफिस सर्पिलिफोलिया*, *अर्गीरिया कुनेता*, *एरिस्टिडा स्टॉक्सि*, *बारलेरिया कोर्टैलिका*, *बारलेरिया मायसोरेंसिस*, *बारलेरिया*, *करकुमा स्यूडोमोंटाना*, *डेकालेपिस हैमिल्टनी*, +*डोलिचंद्रोन फाल्काटा*, *एक्सैकम टेट्रागोनम*, *हैबेनेरिया सह्याद्रिका*, *कलौंचो भिदेई*, *मिरिस्टिका डैक्टाइलोइड्स*, *नीलगिरिएन्थस नीलघेरेंसिस*, *फाइलेन्थस इंडोफिशरी*, *टेरोकार्पस मार्सुपियम*, *साइज़ीगियम मालाबेरिकम*, *जिंजीबर नीसानुम* अभयारण्य के अंदर संरक्षित हैं। इस अभयारण्य के कुछ दिलचस्प पौधों के बारे में नीचे दिए गए हैं।

करकुमा स्यूडोमोंटाना (पहाड़ी हल्दी) भारत के पश्चिमी और पूर्वी घाटों में स्थानीय चिकित्सा मे काम आने वाली एक महत्वपूर्ण जाति है। इसकी जड़ों को उबालकर खाया जाता है और कुष्ठ, पेचिश, हृदय रोग और सामान्य दुर्बलता के खिलाफ फायदेमंद बताया जाता है, जबकि पीलिया को ठीक करने के लिए कंद के अर्क का उपयोग किया जाता है, और महिलाएं स्तनपान बढ़ाने के लिए उबले हुए कंद खाती हैं। यह प्रजाति 1950 के दशक में पश्चिमी घाटों में सामान्य रूप से मिलती थी लेकिन अधिक दोहन के कारण आज यह पौधा दुर्लभ हो गया है। वर्तमान में आईयूसीएन (IUCN) द्वारा इसे एक संवेदनशील श्रेणी में रखा गया है। यह पौधा बीआरटी अभयारण्य के अंदर संरक्षित है।

नोथापोडाइट्स निमोनियाना – यह जाति कर्नाटक के नम पर्णपाती से लेकर सदाबहार जंगलों के बाहरी इलाके में पाई जाने वाली एक सामान्य जाति है। हालाँकि यह पौधा आमतौर पर अभयारण्य में पाया जाता है लेकिन इसके औषधीय गुणों के कारण यह भी खतरे का सामना कर रहा है। यह पौधा कैंप्टोथेसिन (सीपीटी) का स्रोत है जो कि एक कैंसर रोधी यौगिक है।

ड्रोसेरा पेल्टाटा – यह एक कीटभक्षी पौधे की जाति है जिसे आमतौर पर शील्ड सनड्यू कहा जाता है जो इस अभयारण्य में भी पाया जाता है। यह अर्ध-सदाबहार जंगलों में घास की ढलानों के साथ पाया जाता है।

गाइनोस्टेम्मा पेंटाफिलम एक शाकिय बेल है। यह कुकुर्बिटासी कुल का सदस्य है। यह कॉफी बागानों के पास चट्टानी धारा के किनारों पर उगता हुआ पाया जाता है। कोलेस्ट्रॉल और रक्त शर्करा के स्तर को कम करने, प्रतिरक्षा को मजबूत करने और कैंसर के विकास को रोकने में इसके व्यापक लाभकारी प्रभावों के कारण इसे चीन, जापान और कोरिया में अत्यधिक बहुमुखी प्रतिभा की हर्बल दवा के रूप में उपयोग किया जाता है। इसका उपयोग हर्बल चाय बनाने के लिए भी किया जाता है। हालाँकि, भारत में अभी तक इसके औषधीय उपयोग की खोज नहीं की गई है।

एंटाडा पुरसेथा एक जंगली बेल है जो नम पर्णपाती और सदाबहार जंगलों में पाई जाति है। इस शानदार बेल को जंगलों के अंदर नदी और नाले के किनारे देखा जा सकता है। इसकी फली अधिकतम 2 मीटर लाम्बी होती है। बीज भी बड़े, चपटे, मैरून-ब्राउन और कठोर होते हैं।

डेकालेपिस हैमिल्टनी एक स्थानिक जंगली बेल है जो शुष्क पर्णपाती से नम पर्णपाती जंगलों में होती है। बड़े पैमाने पर इसे स्थानीय रूप से काटा जाता है। इसे *हेमाइड्समस इंडिकस* (सारिवा) के विकल्प के रूप में भी उपयोग किया जाता है। इसकी जड़ों को बड़े पैमाने पर

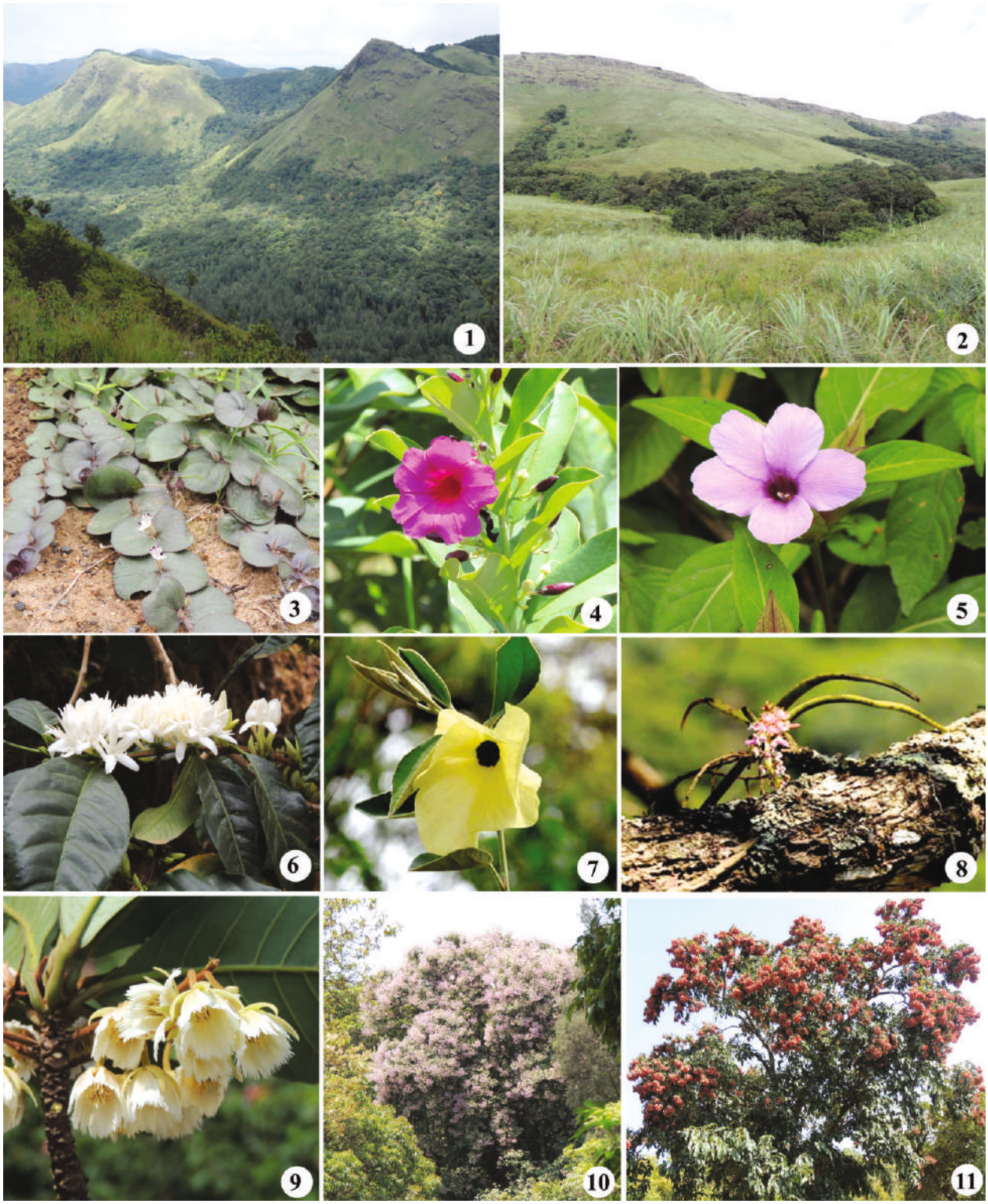

1. बीआरटी का एक दृश्य; 2. शोला वन; 3. *एंड्रोग्राफिस सर्पिलिफोलिया* - एक स्थानिक पौधा; 4. *अर्गिरिया कुनेता*- एक स्थानिक झाड़ी; 5. *बारलेरिया मोंटाना* - जंगली सजावटी झाड़ी; 6. *कॉफ़ीया अरेबिका*; 7. *डेकाशिस्टिया क्रोटोनिफोलिया*; 8. *डिप्लोसेंट्रम रिकर्वम* - एक एपिफाइटिक ऑर्किड; 9. *एलियोकार्पस ट्यूबरकुलैटस* - रुद्राक्ष का पेड़; 10. *वर्नोनिया अर्बोरिया* एवं 11. *टर्मिनलिया पैनिकुलता* - एक स्थानिक वृक्ष

अचार के लिए दोहन किया जाता है। अचार और औषधीय प्रयोजनों के लिए बीआरटी हिल्स से सैकड़ों टन में जड़ों काटा गया।

यह वन्यजीव अभयारण्य सदियों से इस क्षेत्र में रहने वाले सोलिगास आदिवासी समुदाय का भी घर है। यदि हम इस समुदाय के इतिहास को जाने तो कुछ अध्ययनों से पता चलता है कि सोलिगास दक्षिणी भारत में देश के पहले बसने वालों में से हो सकते हैं। सोलिगा जनजाति का सबसे पहला विवरण स्कॉटिश यात्री-चिकित्सक फ्रांसिस बुकानन-हैमिल्टन ने किया उसने सोलिगा को "कुछ हद तक शर्मीला" बताया। अपने वन अधिकारों को मान्यता दिलाने के लिए भारत में बाघ अभयारण्य के मुख्य क्षेत्र में रहने वाले पहले आदिवासी समुदाय बनकर इतिहास रच दिया। सोलिगा छोटे-छोटे बस्तियों में रहते हैं जिन्हें पॉडस कहा जाता है। परंपरागत रूप से वे अपनी आजीविका के लिए जंगलों पर निर्भर रहे हैं। सोलिगाओं को बाँस की सन्तान भी कहा जाता है क्योंकि इस शब्द का अर्थ यह माना जाता है कि उनकी उत्पत्ति बाँस से हुई है।

सोलिगा मुख्य रूप से शिकार और कृषि करने पर निर्भर रहने वाले लोग हैं। आज भी सोलिगा वनों से अपने घनिष्ठ ज्ञान और औषधीय पौधों और गैर-लकड़ी वन उपज जैसे शहद, आंवले, लाइकेन, कंद, आदि के विवेकपूर्ण उपयोग के लिए जाने जाते हैं। सोलिगा को वन पारिस्थितिकी तंत्र के बारे में गहरी समझ और ज्ञान है। वे बाघ का सम्मान करते हैं और अपने केंद्रीय देवता की पूजा करते हैं, एक विशाल *मैगनोलिया चंपाका* पेड़ जिसे डोड्डासम्पिगे के नाम से जाना जाता है जो कई सौ साल पुराना है और उन्हें महत्वपूर्ण आध्यात्मिक मूल्य देता है। उनके पास अपने स्वयं के देवी-देवताओं को समर्पित जंगल के भीतर कई अन्य पवित्र स्थल भी हैं। जब बीआरटी क्षेत्र को एक वन्यजीव अभयारण्य घोषित किया गया था, तो खेती और शिकार को स्थानांतरित करना पूरी तरह से प्रतिबंधित कर दिया गया था, और सोलिगा को कृषि के लिए भूमि के छोटे टुकड़े आवंटित किए गए थे।

सोलिगा लोगों के लिए एनटीएफपी का निष्कर्षण आय का मुख्य स्रोत है। एनटीएफपी का विपणन जनजातीय सहकारी समितियों के माध्यम से किया जाता है जिन्हें बड़े पैमाने पर आदिवासी बहुउद्देश्यीय समितियाँ (LAMPS) कहा जाता है। बी आर हिल्स ने देश में एकमात्र टाइगर रिजर्व के रूप में प्रतिष्ठित दर्जा प्राप्त किया, जिसमें आदिवासी समुदाय रिजर्व के भीतर रहते है। सोलिगास के भीतर एक अनूठी व्यवस्था यह है कि वे अपने खेत में उगाया गया पहली उपज को जानवरों और पक्षियों को देते हैं। यह प्रकृति माँ के प्रति उनके प्रेम को दर्शाता है।

अन्य क्षेत्रों की तरह इस अभयारण्य को भी कुछ आक्रामक प्रजातियों के खतरों का सामना करना पड़ रहा है। लैंटाना कैमरा और यूपेटोरियम एडेनोफोरम दो प्रमुख विदेशी जातियां हैं जो पश्चिमी घाट के कई अन्य हिस्सों की तरह बीआरटी की पहाड़ियों और ढलानों पर में फैल रही हैं। बीआरटी में, झाड़ीदार जंगलों, शुष्क पर्णपाती जंगलों और नम पर्णपाती जंगलों के अधिकांश निचले क्षेत्रों पर लैंटाना कैमरा तेजी से फैल रहा है। इसके अलावा कॉफी के रोपण के लिए होन्नेमेटी, अटिकन और बेदगुली क्षेत्रों के साथ सदाबहार जंगलों का एक हिस्सा साफ कर दिया गया है। कॉफी को बीआर पहाड़ियों में 19वीं शताब्दी के उत्तरार्ध में एक स्कॉट्समैन रैंडोल्फ़ सी. मॉरिस द्वारा लगाये गए। उन्होंने होनामेट्टी में एक कॉफी एस्टेट की स्थापना की जिसे बाद में उनके बेटे कर्नल राल्फ मॉरिस, जो कि एक शिकारी और पर्यावरणविद भी थे इस कॉफी एस्टेट का ख्याल रखा। उन्होंने बीआरटी की पहाड़ियों के प्राकृतिक इतिहास के बारे में व्यापक रूप से प्रकाशित किया। वर्तमान में इन कॉफी बागानों का स्वामित्व निजी हाथों में है। एस्टेट के पास "होन्नामेट्टी कल्लू" है, जो एक विशाल शिलाखंड है। अगर कोई इस पर पत्थर से वार करे तो यह एक धातु का झंकार देता है। सोलिगा जनजातियों में एक किंवदंती है कि चट्टान के भीतर सोना है।"होन्नामेट्टी" का अर्थ स्वयं 'सुनहरा पदचिह्न' है जो एक और किंवदंती को संदर्भित करता है कि भगवान रंगनाथ ने प्रत्येक चरण में अपना आकार बदलते हुए पहाड़ियों पर छलांग लगाई और पहाड़ियों पर अपना पदचिह्न छोड़ दिया।

यह अभयारण्य देश के उच्चतम बायोमास समृद्ध क्षेत्र में से एक है। इस अभयारण्य को पश्चिमी घाटों और इस्टर्न घाटों के बीच एक जीवंत सेतु माना जाता है। इसलिए, इस आवास का संरक्षण इसकी समृद्ध पुष्प और जीव विविधता को बनाए रखने के लिए महत्वपूर्ण है।

पौधों में खनिज पोषण तत्व एवं उनके कमी के लक्षण

अमित कुमार सिंह एवं ओंकार नाथ मौर्य[1]

वनस्पति विज्ञान विभागए लखनऊ विश्वविद्यालय, लखनऊ

[1]भारतीय वनस्पति सर्वेक्षण, उत्तरी क्षेत्रीय केन्द्र, ईलाहाबाद

परिचय: पौधे श्हरित लवकश् (क्लोरोफिल) होने के कारण स्वयंपोषी होते हैं। यह श्हरित लवकश् उनकी पत्तियों में पाया जाता है, जिससे पौधे श्हरितिमायुक्तश् दिखाई देते हैं। पौधों को भोजन बनाने के लिए अकार्बनिक तत्वों की आवश्यकता होती है जो वे मृदा एवं जल से प्राप्त करते हैं साथ ही साथ पौधे उन आकार्बनिक तत्वां को भोजन के रूप में कार्बनिक पदार्थ में निरंतर बदलते रहते हैं। भोजन एवं सफल जीवन चक्र हेतु पौधों को जिन आवश्यक खनिज तत्वों की आवश्यकता होती है उन्हें अनिवार्य खनिज पोषक तत्व कहा जाता है एवं इनके पोषण को खनिज पोषण कहा जाता है।

अब तक ज्ञात लगभग 105 खनिज तत्वों में से 60 से भी अधिक खनिज तत्व पौधों में पाए जाते हैं, जिसमें से 17 से 20 खनिज तत्वों को अति आवश्यक खनिज तत्वों की श्रेणी में रखा गया है। खनिज पोषण तत्वों की कमी से पौधों में विभिन्न प्रकार के लक्षण दिखाई देते हैं जैसेरू. बोरान (ठ) की कमी से कलियों का रंग सफेद या हल्के भूरे मृत ऊत्तक की तरह एवं वृद्धिशील भाग के पास की पत्तियाँ पीली हो जाना इत्यादि।

पौधां में खनिज पोषण की अनिवार्यता की खोज:

पौधां में खनिज पोषक तत्वों की अनिवार्यता की खोज सर्वप्रथम एक जर्मन पादपविद् जूलियस वोन सैकस् (1860) ने श्मृदाविहीनश् माध्यम के द्वारा किया था। उन्होंने अपने प्रयोग में पौधों को श्मृदा की पूर्ण अनुपस्थितिश् में श्खनिज पोषण तत्वों के विलयनश् में उगाने की तकनीक जो श्जल.संवर्धनश् के नाम से जानी जाती है की खोज के साथ ही अनिवार्य खनिज पोषण तत्वों द्वारा पौधों को उगाने एवं पौधों के विकास हेतु उनकी अनिवार्यता को सिद्ध किया। वर्तमान में जल.संवर्धन विधि में अनेकों तकनीकी सुधार एवं उन्नत विधियों को निरंतर विकसित करते हुए एवं शुद्ध जल व पोषक तत्वों का आवश्यक संतुलन रखकर यह सिद्ध किया जा चुका है कि पौधों में ज्ञात लगभग 105 खनिज तत्वों में से 60 से अधिक तत्व जिनमे: स्वर्ण (Au), सिलिनियम (Se) एवं नाभिकीय तत्व जैसे-स्ट्रशियम (Sr) जैसे खनिज तत्व भी संग्रहित हो जाते हैं, वे पौधों के लिए अनिवार्य है या नहीं।

खनिज तत्वों की अनिवार्यता का निर्धारणरू.

पौधों में किसी भी खनिज पोषक तत्व की अनिवार्यता का निर्धारण हम निम्नलिखित बिंदुओं के आधार पर कर सकते हैं .

1. उक्त तत्व की पादप के 'समान्य वृद्धि' एवं सफल जीवन चक्रं (जनन) हेतु अति आवश्यकता एवं उस तत्व की अनुपस्थिति में पौधे का जीवन चक्र पूरा ना हो पाना।

2. उक्त खनिज पोषक तत्व पौधे हेतु श्विशिष्टश् होना चाहिए एवं पोषक तत्व को किसी अन्य पोषक तत्व से प्रतिस्थापित न किया जा सके या उक्त खनिज पोषक तत्व की कमी किसी अन्य तत्व से दूर न किया जा सके।

3. उक्त खनिज पोषक तत्व पादप के उपापचय में प्रत्यक्ष रूप से शामिल हो।

उपरोक्त बिंदुओं के आधार पर लगभग 20 खनिज पोषक तत्वों को पौधों की वृद्धि, सफल जीवन चक्र एवं विभिन्न उपापचयी कार्य हेतु अनिवार्य माना गया है। इन खनिज पोषक तत्वों को उनकी पौधो के लिए आवश्यक मात्रा के आधार पर 2 प्रमुख श्रेणियों में बांटा गया है.

1. वृहत्त पोषक तत्व या दीर्घ मात्रा पोषक तत्व

2. सूक्ष्म पोषक तत्व या लघु मात्रा पोषक तत्व

अतरू अनिवार्य पोषक तत्व चाहे वे वृहत्त पोषक तत्व हो या सूक्ष्म पोषक तत्व अलग-अलग, अथवा संयुक्त रूप से पादप में कई प्रकार की क्रियाओं जैसेरू. पादप की कोशिकाओं में उपापचय क्रिया, कोशिका झिल्ली की पारगम्यता, इलेक्ट्रॉन परिवहन तंत्र, कोशिका में द्रव के परासरण दाब का नियंत्रण, बफर कार्य, प्रकिण्वों के विशेषक कार्य, सह.प्रकिण्वों के मुख्य संधटन एवं वृहद जैविक अणुओं में मुख्य संरचनात्मक इकाइयों के कार्य इत्यादि में प्रमुख भूमिका निभाते हैं।

अनिवार्य.खनिज पोषक तत्वों के प्रकाररू.

पौधों हेतु अनिवार्य खनिज पोषक तत्वों को पौधों की आवश्यकतानुसार दो प्रमुख श्रेणियों में रखा गया हैए जो निम्नलिखित हैं.

1. वृहत्त पोषक खनिज तत्व या दीर्घ मात्रा पोषक तत्व: इन तत्वों की आवश्यकता पौधों में अधिक मात्रा में होती है साथ ही ये तत्व पौधों के संरचनात्मक इकाइयों में भी अपनी भूमिका निभाते है। सामान्यतरू ये तत्व 0.2% से 0.4% पादप के शुष्कभार अथवा 1 से 10 मिलीग्राम / प्रति लीटर पौधें के शुष्क भार के सांद्रण में मिलते है। उदाहरणरू. कार्बन (C), हाइड्रोजन (H), ऑक्सीजन (O), नाइट्रोजन (N), पोटेशियम (K), फास्फोरस (P) कैलशियम (Ca), मैग्निशियम (Mg) एंव गंधक (S).

2. सूक्ष्म पोषक खनिज तत्व या लघु मात्रा पोषक तत्व: इन खनिज पोषक तत्व की आवश्यकता पौधों में अत्यंत सूक्ष्म मात्रा में होती है एवं इनकी भूमिका कई उपायचयी एवं प्रकिण्वों की प्रक्रियाओं में होती है। सामान्यतरू ये पादप के 0.1% - 0.02% शुष्क भार अथवा 0.01% मिली ग्राम प्रति लीटर या उससे कम पादप के शुष्कभार की सांद्रता में पाए जाते हैं। उदाहरण: जस्ता (Zn), मैगनीज (Mn)ए लोहा (Fe), तांबा (Cu)ए बोरान (B), क्लोरीन (C1), निकिल (Ni), मालीब्डेनम (Mo), कोबोल्ट (Co). सोडियम (Na) एवं सिलिकॉन (Si)।

पौधों के कुछ प्रमुख खनिज तत्वों के कार्य एवं कमी के लक्षण:

कार्बन (C), हाइड्रोजन (H) तथा ऑक्सीजन (O): यद्यपि ये तीनों तत्व धात्विक खनिज तत्व नहीं है फिर भी पौधों के लिए नितांत आवश्यक है। वायुमंडल से प्राप्त होने वाले गैसीय तत्व जैसे: कार्बन डाइऑक्साइड (CO_2) एवं ऑक्सीजन (O_2) एवं मृदा से प्राप्त जल (H_2O) मिलकर पौधों में कार्बन तत्व प्रकाश संश्लेषण की प्रक्रिया द्वारा बनाते हैं। इनकी कमी से पौधों में श्वसन एवं प्रकाश संश्लेषण की सुचारु रूप से नहीं हो पाती है एवं पौधों का विकास व जीवन चक्र रुक जाता है।

नाइट्रोजन (छ): पौधे इसका अवशोषण नाइट्रेट आयन (NO_3)के रूप में मृदा से करते हैं। कभी.कभी नाइट्रोजन का अवशोषण नाइट्राइट (NO_2) तथा अमोनियम आयन (NH_4)के रूप में भी होता है। नाइट्रोजन पौधों में प्रोटीन के निर्माण के लिए आवश्यक होता है नाइट्रोजन की कमी से पौधे में प्रोटीन संश्लेषण नहीं होता जिससे पौधे की वृद्धि रूक जाती है। पौधे हल्के हरे रंग के या हल्के पीले रंग के होकर बौने रह जाते हैं। पुरानी पत्तियां पहले पीली (हरितिमाहीन) हो जाती है। मोटे अनाज वाली फसलों में पत्तियों का पीलापन अग्रभाग से शुरू होकर मध्य शिराओं तक फैल जाता है।

फास्फोरस (P): पौधों द्वारा मृदा से फास्फोरस का अवशोषण फास्फेट आयन (PO_4) तथा फास्फाइट आयनों (PO_3) के रूप में किया जाता है। यह पौधों में वृद्धि एवं फास्फोराइलेशन क्रिया के लिए जरूरी है। इसकी कमी से पत्तियां छोटी रह जाती हैं और पौधों का रंग गुलाबी होकर गहरा हरा हो जाता है।

पोटेशियम (K): पौधे द्धारा पौटेशियम आयन (K^+) के रूप में अवशोषण होता है। इसकी उपयोगिता रंध्रो के खुलने.बंद होने, भोजन के संवहन इत्यादि में है। इसकी कमी से पौधा झाड़ीनुमा हो जाता है। एवं पौधे की रोग प्रतिरोधक क्षमता भी कम हो जाती है। पुरानी पत्तियों का रंग पीला/भूरा हो जाता है और बाहरी किनारे कट-फट जाते है। मोटे अनाज जैसे-मक्का एवं ज्वार में यह लक्षण पत्तियों के अग्र भाग से प्रारम्भ होते है।

कैल्शियम (Ca): मृदा से पौधे कैल्शियम आयन (Ca^{++}) के रूप में अवशोषित करते है। यह पादप की कोशिकाओं में वृद्धि, मजबूती एवं उपापचयी क्रिया हेतु आवश्यक होता है। इसकी कमी से पुष्प विकसित होने की अवस्था में गिर जाते हैं एवं मूलरोमों में सूजन आ

जाती है। पौधों में नवीन पत्तियाँ पहले प्रभावित होती है तथा देर से निकलती हैं। शीर्ष कलिकाएं (Apical buds) खराब हो जाती है। मक्के की वाहिनिकाएं/नलिकाएं आपस में चिपक जाती हैं।

मैग्नीशियम (Mg):-पौधों द्वारा मैग्नीशियम आयन (Mg^{++}) के रूप में अवशोषित किया जाता है। ये पौधे के हरित लवक के निर्माण में मुख्य भूमिका निभाते हैं। इनकी कमी से क्लोरोसिस (हरितिमाहीनता) नामक लक्षण दिखाई देते है। पत्तियां पीली हो जाती हैं। पत्तियों के अग्रभाग का रंग गहरा हरा होकर शिराओं का मध्य भाग सुनहरा पीला हो जाता है। अंत में किनारे से अंदर की ओर लाल-बैंगनी रंग के धब्बे बन जाते हैं।

जिंक/जस्ता (Zn): पौधे जिंक आयन (Zn^{++}) के रूप में इसका अवशोषण करते हैं। मृदा में जिंक, जिंक सल्फेट ($ZnSO_4$) के रूप में भी विद्यमान रहता है। जिंक धातु लगभग 300 प्रकिण्वों की प्रक्रियाओं हेतु आवश्यक पाए गये है। ये धातु पौधे की वृद्धि, उपापचयी क्रियाओं, पर्यावरण तनावों से बचाव इत्यादि हेतु आवश्यक है। इसकी कमी से पौधों में चितकबरा रोग हो जाता है। सामान्य तौर पर पत्तियों की शिराओं के मध्य हरितिमाहीनता के लक्षण दिखाई देते हैं और पत्तियों का रंग काँसे की तरह हो जाता है।

बोरान (B): पौधों में बोरॉन का अवशोषण बोरेट आयन (BO_3) के रूप में होता है। बोरिक एसिड द्वारा बोरॉन का संचरण निष्क्रिय किया द्वारा भी पौधे में होता रहता है। बोरॉन पौधे की कायिक एवं जननांकिक वृद्धि हेतु आवश्यक है। फलों की वृद्धि एवं पुष्प कलिकाओं के विकास, भोजन, संरचण इत्यादि में बोरॉन अपनी भूमिका निभाता है। इसकी कमी से जड़ों का विकास कम होता है। पुष्पों की संख्या कम एवं फलों का आकार छोटा हो जाता है। इसकी कमी से वृद्धिशील भाग के पास की पत्तियों का रंग पीला हो जाता है। कलियाँ सफेद या हल्के भूरे मृत उत्तक की तरह दिखने लगती है।

ताँबा (Cu): पौधों में तांबे का अवशोषण क्यूप्रिक आयन (Cu^{++}) के रूप में होता है। यह कई प्रकार के तनावों के विपरीत बनने वाले प्रकिष्वों की संरचना में सहयोग कर पौधे को वातावरणीय तनावों से बचाता है। साथ ही उपापचयी प्रक्रिया में अपनी भूमिका निभाता है। इसकी कमी से खाद्यान्न वाली फसलों में गुच्छों में वृद्धि होती है तथा शीर्ष में दाने नही लगते। इसकी कमी से पत्तियों में हरितिमाहीनता, सूखापन तथा मुरझाने का लक्षण दिखाई देता है।

गंधक (S):पौधे गंधक को सल्फेट आयन (SO_4) के रूप में अवशोषित करते हैं। प्रोटीन, संश्लेषण, विटामिन, एल्केलॉयड, संश्लेषण व कोशिकाओं के संरचनात्मक प्रक्रिया में अपनी भूमिका निभाता है। इसकी कमी से पत्ते के अग्रभाग तथा किनारे पीले होकर अन्दर मुड़ जाते हैं एवं पत्तियां पीली हो जाती है। पत्तियाँ शिराओं, सहित, गहरे हरे से पीले रंग में बदल जाती है तथा बाद में सफेद हो जाती है। सबसे पहले नई पत्तियां प्रभावित होती है।

लोहा (Fe): पौधे लोहे को फेरिक आयन (Fe^{++}) के रूप में मृदा से अवशोषित करते है। इनकी प्रमुख भूमिका श्वसन तंत्र, क्लोरिफिल निर्माण एवं कई प्रकिण्वों की प्रक्रियाओं में अनिवार्य रूप से पायी जाती है। इसकी कमी से पत्तियाँ पीली हो जाती है एवं वृन्त की वृद्धि रूक जाती है। नई पत्तियों में तने से ऊपरी भाग पर सबसे पहले हरितिमाहीनता के लक्षण आते है। शिराओ को छोड़कर पत्तियों का रंग एक साथ पीला हो जाता है। उक्त कमी होने से भूरे रंगो का धब्बा या मृत ऊतक के लक्षण दिखाई देते है।

मैंग्नीज (Mn): पौधे मैंग्नीज का अवशोषण मैग्नस आयन (Mn^{++}) के रूप में करते है। इनकी भूमिका हरित लवक (क्लोरोफिल) के निर्माण, वृद्धि एवं प्रकिण्वों की प्रक्रियाओं में पाई गई है। इनकी कमी से हरितलवक का संश्लेषण बाधित होता है। पत्तियों का रंग पीला-धूसर या लाल-धूसर हो जाता है तथा शिराएं हरी रहती है। पत्तियों का किनारा और शिराओं का मध्यभाग हरितिमाहीन हो जाता है। हरितिमाहीन पत्तियां अपने सामान्य आकार में रहती है।

मॉलीब्डेनम (Mo): पौधों में मॉलीब्डेनम का अवशोषण मॉलीब्डेट आयन (MoO_2^{+2}) के रूप में होता है। इनकी भूमिका पौधें के पुष्पन एवं नाइट्रोजन संश्लेषण में होती है। नई पत्तियां सूख जाती है एवं हल्के हरे रंग की हो जाती है। मध्य शिराओं को छोड़कर पूरी पत्तियां पर सूखे धब्बे दिखाई देते है। नाइट्रोजन के उचित ढंग से उपयोग न होने से पुरानी पत्तियां हरितिमाहीन हो जाती है।

क्लोरीन (Cl): पौधें क्लोराइड, एनायन (Cl^-) के रूप में अवशोषित करते है। इनकी भूमिका मुख्यतः परासरणीय दबाव, बफर संतुलन एवं झिल्ली की पारगम्यता में प्रमुखता से मिलती है। इसकी कमी से पत्तियाँ मुरझा जाती है। प्रकाश संश्लेषण की प्रक्रिया बाधित होती है।

कर्नाटक तट की समुद्री शैवाल विविधता : एक अवलोकन

एस. के. यादव, एवं एम. पलनीसामी*

भारतीय वनस्पति सर्वेक्षण, कोलकाता
*भारतीय वनस्पति सर्वेक्षण, हावड़ा

कर्नाटक राज्य भारत के पश्चिमी तट पर अरब सागर में स्थित एक तटीय राज्य है। प्रशासनिक दृष्टि से यहां कुल 30 जिलें हैं जिसके मात्र तीन जिले जैसे दक्षिण कन्नड़, उडुपी और उत्तर कन्नड़ ही तटीय हैं। कर्नाटक के तटीय क्षेत्रों की कुल लंबाई लगभग 320 किलोमीटर है जो 12°45'-15°00' उत्तरी अक्षांश से 74°00'-75°00' पूर्वी देशांतर के बीच स्थित है। कर्नाटक का तटीय क्षेत्र, जिसे करावली तट भी कहते हैं, दक्षिण में केरल के तलपाडी (कारसगोड जिला) से शुरू होती है और उत्तर में गोवा के तिलमाटी में समाप्त होती है। इसके तटीय क्षेत्र अनेक स्थानों पर नदियां पहाड़ो लैगून, नालों एवं छोटे – छोटे जलाशयों से मिलती है। प्राकृतिक रूप से कर्नाटक समुद्री तट का उत्तरी हिस्सा ज्यादा पहाड़ी है जबकि दक्षिणी हिस्सा मुख्यतः बलूई है। कर्नाटक तट प्राकृतिक रूप से कई द्वीपों से भी सुशोभित है जिसमें प्रमुख रूप से सेंट मेरी द्वीप, नेत्रानी द्वीप, इत्यादी प्रमुख हैं। मंगलोर बंदरगह इस तट पर स्थित प्रमुख बंदरगाह है (प्लेट 1)।

समुद्री शैवाल विविधता एवं इसका महत्व

शैवाल (अल्गी) पादपजात का सबसे प्रारंभिक वर्ग है लेकिन उच्च वनस्पतियों के उत्तरोत्तर विकास एवं पादप विविधता को बनाए रखने में एक महत्वपूर्ण भमिका अदा करती है। भारतीय समुद्री तट, जो लगभग 7500 किलोमीटर लंबी है, अनेकों समुद्री पादपों जैसे समुद्री सूक्ष्म शैवाल (मरीन माइक्रो अल्गी), डायटम्स, समुद्री दीर्घ शैवाल (मरीन मैक्रो अल्गी / सीवीड्स) समुद्री घास (सीग्रास), मैंग्रोब्स इत्यादी को प्रश्रय प्रदान करती है।

समुद्री दीर्घ शैवाल जलीय पारिस्थितिकी को सुचारू रूप से बनाए रखने में महत्वपूर्ण् भूमिका निभाती है। यह प्रकाश संश्लेषण की क्रिया द्वारा समुद्री जल एवं वायुमंडल में ऑक्सीजन की उपलब्धता बनाए रखने, तथा समुद्री जलीय जीवों जैसे मछली, कोरल, स्पंज इत्यादि के लिए भोजन एवं प्रजनन प्रक्रिया (ब्रीडिंग ग्राउंड) में महत्वपूर्ण भूमिका निभाते हुए जलीय पारिस्थितिकों को सुचारू रूप से चलने में अहम भूमिका निभाती है।

समुद्री दीर्घ शैवाल मुख्यतः तीन प्रकार के होते है: हरा शैवाल (क्लोरोफाइसी), भूरा शैवाल (फियोफाइसी) एवं लाल शैवाल (रोडोफाइसी)। ये वर्गीकरण मुख्यतः इन शैवालों में उपस्थित रंग एवं संचयित कार्बोहाइड्रेट के आधार पर किए जाते है। विश्व में समुद्री दीर्घ शैवालों की लगभग 10,000 जातियाँ पाई जाती है। भारतीय समुद्री तट से अभी तक लगभग 865 दीर्घ शैवालों की उपस्थिति को प्रकाशित किया गया है जिसमें 212 जातियां क्लोरोफाइसी, 211 जातियां फियोफाइसी एवं 442 जातियां रोडोफाइसी है। इस सन्दर्भ में लेखकों द्वारा कर्णाटक तट पर समुद्री दीर्घ शैवाल की विविधता पर किये गए अध्ययनो को प्रस्तुत करने का प्रयास किया गया है।

कर्नाटक तट पर शैवाल विविधता:

कर्नाटक के समुद्री तट को लेखकों द्वारा वर्ष 2014-17 के दौरान कई बार सर्वेक्षण किया गया। सर्वेक्षण के दौरान कुल ७४ जगहों को अध्ययन हेतु चूना गया एवं प्राप्त शैवाल के नमूनों को पादपालय के रूप में संरक्षित किया गया। सभी शैवालों का विस्तृत अध्ययन किया गया एवं कुल 108 प्रकार के दीर्घ शैवालों की उपस्थिति को दर्ज किया गया जिसकी वर्गिकी को संक्षिप्त में तालिका 1 में दर्शाया गया है (प्लेट 2)। सभी संग्रहीत किये गए शैवालों के पादप प्रारूप को मद्रास हर्बेरियम, भारतीय वनस्पति सर्वेक्षण, कोयंबटुर में रखा गया है।

प्लेट 1: कर्नाटक तट का विहंगम दृश्य : 1. सूरतकल तट पर शैवालों का प्रचुर विकास; 2. कम ज्वार के समय गोर्टे तट पर उगे शैवालों का दृश्य; 3. तटीय सुरक्षा हेतु कृत्रिम रूप से डाले गए पत्थरो पर उगे हरे शैवाल *अल्वा* का अनुकूल विकास; 4. काँप बीच पर बिखरे पत्थरो पर शैवालों का विकास; 5. मंगलोर तट पर कृत्रिम रूप से डाले गए पत्थरो पर उगे मिश्रित शैवाल एवं 6. कारवार तट पर सूर्यास्त के समय का मनमोहक दृश्य।

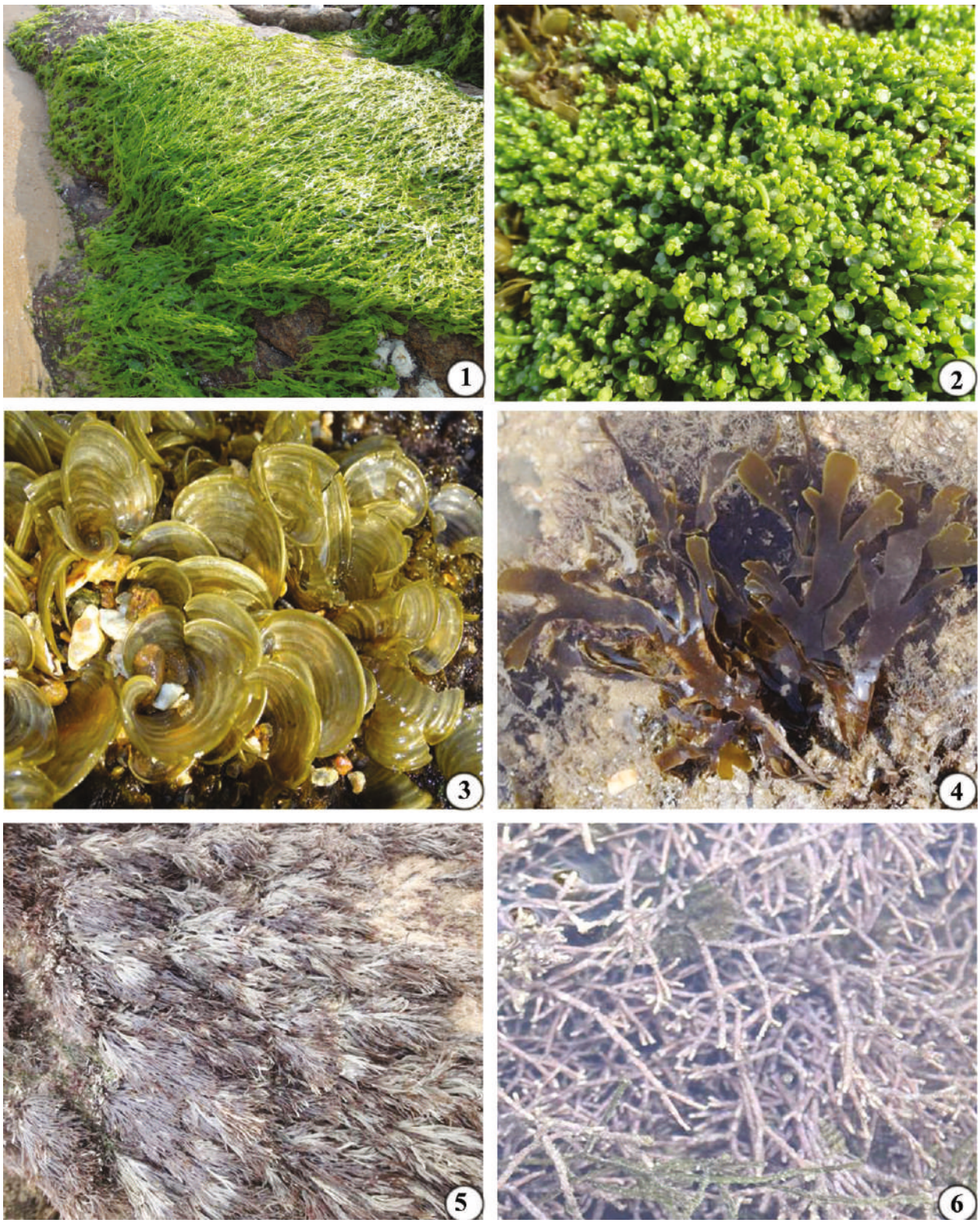

प्लेट 2: समुद्री हरा शैवाल: 1. *अल्वा फेसिएटा*; 2. *कालार्पा पेल्टाटा*, भूरा शैवाल : 3. *पेडिना टेट्रास्ट्रोमेटिका*; 4. *स्टॉकियोस्पर्मम मार्गिनेटम*, लाल शैवाल; 5. *ग्रेसीलेरिया कॉर्टिकाटा* एवं 6. *एम्फीरोआ फ्राजिलिसिमा*।

तालिका 1: कर्नाटक तट पर पाए जाने वाले समुद्री दीर्घ शैवाल

वर्ग	क्रम	परिवार	वंश	जाति	प्रतिशत (%)
क्लोरोफाइसी	6	11	16	36	33
फियोफाइसी	5	5	13	30	28
रोडोफाइसी	9	15	24	42	39
कुल	20	31	53	108	100

सर्वेक्षण के दौरान पाया गया कि फियोफाइसी वर्ग के अंतर्गत फैमिली डिक्टयोटेसी सबसे ज्यादा विविधता दर्शाती है क्योंकि इसमें ६ जेनेरा (वंश) एवं कुल 17 प्रजातियां आती हैं। उसके बाद क्लोरोफाइसी वर्ग के अल्वेसी फैमिली का स्थान है, जिसमें 2 जेनेरा एवं 10 प्रजातियां हैं। इसी तरह वंशात्मक स्तर पर, डिक्टयोटा एवं सर्गासम 7-7 जातियों के साथ सबसे ज्यादा विविधता दिखाती है। सर्वेक्षण के दौरान कई नए शैवाल जातियों को भी दर्ज किया गया जिसे कर्नाटक तट से पहली बार संकलित किया गया है एवं इसे विभिन्न शोधपत्रों में प्रकाशित भी किया गया है। अतः यह अध्ययन कर्नाटक तट की समुद्री दीर्घ शैवाल पर प्रकाश डालता है।

निष्कर्षः शैवाल विविधता हमारे देश की पादप संपदा का एक अभिन्न अंग है। कर्नाटक तट पर स्थित कुछ स्थानों जैसे सेंट मैरी द्वीप, सुरतकल, सोमेश्वर, ओम बीच, तलकोड, होन्नावर, वन्नाली, उचीला, कारवार, मंजली इत्यादी में शैवाल की काफी अच्छी विविधता पाई जाती है क्योंकि यह मुख्यतः पहाड़ी तट है एवं यहाँ पत्थरों की बहुलता है जिस पर ये शैवाल उगते हैं। शैवाल की बहुत सी जातियां ऐसी हैं जो आर्थिक रूप से काफी उपयोगी होती है एवं इसका प्रयोग विभिन्न दक्षिण-पूर्वी एशियाई देशो में अनेक रूपों में जैसे भोजन, पशुचारा एवं पॉल्ट्रीफार्म में, आइसक्रीम, दवा बायो-फर्टिलाइजर बनाने में, एवं अनेक जैव रासायनिक उद्योगो जैसे अगर-अगर, अल्जीन, अल्जीनेट इत्यादि मे किया जाता है। अतः आशा करते हैं कि कर्नाटक तट पर पाए जाने वाले शैवालों से सम्बंधित वर्तमान शोध, भविष्य में वहां के तटीय लोगों के लिए अधिक जानकारी प्रदान करने एवं इसके सतत उपयोग करते हुए एक वैकल्पिक रोजगार उपलब्ध कराने की दिशा में सहायक सिद्ध होगी।

मेघालय की ग्रामीण जनजातियों से प्राप्त कुछ अल्पज्ञात खाद्य, औषधीय और अन्य उपयोगी पौधों का विवरण

कांगकन पगाग, सुरेंद्र कुमार शर्मा एवं ए. के. साहू

भारतीय वनस्पति सर्वेक्षण, कोलकाता

मेघालय, पूर्वी उप-हिमालय में स्थित, भारत के खूबसूरत राज्यों में से एक है जिसका क्षेत्रफल 22,429 वर्ग किलोमीटर है। 2011 की जनगणना के अनुसार, मेघालय की जनसंख्या 29,64,007 है। यहाँ निवास करने वाली मुख्य जनजातियाँ खासी, गारो और पनार हैं। यहाँ दूर तक फैली हुई खूबसूरत पहाड़ियाँ आसमान को छूती हुई सी प्रतीत होती हैं। इन पहाड़ियों के ऊपर मंडराते हुए बादलों से ये और अधिक सुंदर दिखाई देते हैं। इन पहाड़ियों में यहाँ के पौधों और लोगों के जीवन से जुडी अनेकों कहानियाँ हैं। ये पहाड़ियाँ कई उत्कृष्ट पौधों का निवास हैं जिनके आकार, प्रकार और गुणों में विशिष्टता पाई जाती है। यहाँ पाए जाने वाले पौधों की जड़ों से लेकर फलों तक के भागों में कई गुण हैं जो लोग अनेक वर्षो से यहां रह रहे हैं, वे इन पौधों की उपयोगिता के बारे में अच्छा ज्ञान रखते हैं। जो पौधे औषधीय या खाद्य पदार्थ के रूप में उपयोगी होते हैं, वो बाजार के माध्यम से अन्य लोंगो तक पहुंचाए जाते हैं। मेघालय की मातृसत्तात्मक सामाजिकता के कारण बाजार में भी महिलाओं का विक्रेता के रूप में प्रभुत्व पाया जाता है। ये बाजार में फल-सब्जियों से लेकर घरेलू सामान तक बेचते हुए पाई जाती हैं। मौसम चाहे कितना भी खराब हो, सर्दी हो या बरसात, वे अपने द्वारा लाये गए खाद्य पादपों और कंद-मूल-फलों को बेच कर ही जाती हैं। इनकी बिक्री से प्राप्त आय से ये अपना जीवन यापन करते हैं। यहाँ के लोगों के लिए यह दैनिक जीवनचर्या है, लेकिन जो लोग यहाँ के पौधो और इनकी उपयोगिता से अपरिचित है, वे इस पारंपरिक ज्ञान को अर्जित करके और अन्य लोगों को शिक्षित करके मानव जीवन के स्वास्थ्य को बेहतर बनाने में योगदान कर सकते है। इस लेख के माध्यम से अल्प ज्ञात उपयोगी पौधों के बारे में बताने का प्रयास किया गया हैं जो गाँव के बाजारों में सब्जियों, औषधियों और अन्य उपयोगी पौधों के रूप में बेचे जाते हैं। जिनका घर में खाद्य से लेकर औषधियों के रूप में अलग-अलग उपयोग होते हैं।

केम्फेरिया गलांगा

फसलों की स्थानीय किस्में, अद्वितीय जलवायु और मिट्टी की विभिन्नता के कारण, आकार और प्रकार में भिन्नता होती है। जैसे दो अलग-अलग प्रकार के आलू, जिन्हें आमतौर पर गारो आलू के रूप में जाना जाता है। खासी पहाड़ियों और गारो पहाड़ियों में अलग-अलग प्रकार के चावल उगाए जाते हैं, *लूफा एक्युटेंगला* का पका हुआ सूखा फल रेशेदार होता है जिसे स्नान करने के लिए स्पंज के रूप में उपयोग किया जाता है, यह वाणिज्यिक कृत्रिम पदार्थ का एक अच्छा विकल्प होता है। लौकी से बनी हुई एक और वस्तु बड़े पैमाने पर बाजार में बेची जाती है, इसके सूखे फल का उपयोग पीने के लिए बर्तन के रूप में किया जाता है। इस तरह से कई पौधे है, जिनका उपयोग अल्प ज्ञात हैं तथा भारत में लोग इनसे अनभिज्ञ है। ये पूर्वी खासी पहाड़ियों और जैंतिया पहाड़ियों के विभिन्न सब्जी बाजारों में दैनिक रूप से बेचे जाते हैं। ग्रामीण बाजारों से प्राप्त कुछ पौधों का वानस्पतिक नाम, कुल, स्थानीय नाम खासी, असमिया, हिंदी आदि भाषा में एवं इनके व्यवहारिक उपयोग आदि का वर्णन किया गया है।

क्रमांक	पौधे का वानस्पतिक नाम एवं कुल	स्थानीय नाम	उपयोग
1	*अल्पिनिया गलंगा* (जिन्जीबैरेसी)	बड़ा कुलंजन (हि.) फ्लांग-सॉव (जेंतिया)	राइजोम का उपयोग भोजन को स्वादिष्ट बनाने के लिए मसाले के रूप में किया जाता है।
2	*कोएक्स लक्रीमा* (पोएसी)	संक्रू (हि.) सोहरिउ (खासी)	सूखे हुए दानों को कच्चा खाया जाता है और उबाल कर दलिया बना कर भी खाया जाता है।
3	*एलैओकॉर्पस फ्लोरीबंदस*	जलपई (हि.) जल्फाइ (एलैओकॉपेसी) (असमिया)	फल खाने योग्य होता है।
4	*फ्लेमिंजिया प्रोक्यूमबेंस* (फैबेसी)	सोह-फलांग (खासी)	कंद मूल कच्चा खाया जाता है।
5	*जेंसियाना टेनेला* (जेंसियेनेसी)	जेंसियाना	पौधे को उबाल कर सूप बनाया जाता है इसे रक्त शोधक के रूप में उपयोग किया जाता है।
6	*गार्सीनिया पेडंकुलाटा* (क्लूसिएसी)	तिकुर (हि.) डेंग-सोह दानेई (खासी)	फल को कच्चा या पकाकर खाया जाता है।
7	*गॉएनोकार्डीया ओडोराटा* (अचारीऐसी)	लेमटेम (असमिया) चौलमोगरा (हि.) डेंग-सोहलिएंग (खासी)	बीज से प्राप्त तेल का उपयोग कुष्ठ रोग के उपचार में किया जाता है।
8	*केम्फेरिया गलांगा* (जिन्जीबैरसी)	सिधौल (हि.) चन्द्रमूल (असमिया)	स्थानीय किस्म (छोटे आकार) के प्रकंद को कफोत्सारक औषधि के रूप में उपयोग किया जाता है।
9	*पंडानस फरकेटस* (पंडानेसी)	केतकी (संस्कृत) लाम केतुकी (मणिपुरी)	जड़ का उपयोग फर्श की सफाई के लिए ब्रश के रूप में किया जाता है।
10	*पेरिला फ्रूटीसेन्स* (लेमीऐसी)	भंजिरा (हि.)	बीज से प्राप्त तेल का उपयोग खाद्य पदार्थ के रूप में और पेंट बनाने में किया जाता है।
11	*फ्लोगाकैंथस थर्सिफ्लोरस* (अकेंथेसी)	तिताफूल (असमिया), डेंग-सोह-कजुत (खासी)	पुष्पक्रम, सब्जी के रूप में खाया जाता है।
12	*पाइपर पेपलोइड्स* (पाइपरेसी)	जंगली पाइपर	बीजों (स्थानीय किस्म) का उपयोग मसाले के रूप में किया जाता है।
13	*पाइनस केसिया* (पाइनेसी)	खासी पाइन	लकड़ी सुगंधित होती है, इसे जलाने से मच्छर और कीड़े-मकोड़े भाग जाते हैं।
14	*फिर्नियम प्यूबिनर्व* (मारनटेसी)	पैकिंग पत्तियाँ (सामान्य नाम) शला मेट (खासी) बोलगाता (गारो)	बड़े आकार की पत्तियों का उपयोग मांस और मछली की पैकिंग में किया जाता है।
15	*पोटेंटिला फलजेंस* (रोजेसी)	ब्रजदंती (हि.)	जड़ो का उपयोग अतिसार के इलाज में किया जाता है।
16	*वाईबरनम कोलब्रोकिएनम*	वाईबरनम	पुष्पक्रम को उबाल कर कमजोरी दूर करने में उपयोग किया जाता है।

1. *केम्फेरिया गलांगा;* 2. *पंडानस फरकेटस*; 3. *पाइनस केसिया*; 4. *पाइपर पीपुलोइड्स*; 5. *पोटेंटिला फलजेंस* एवं *फिर्नियम प्यूबिनर्व*

उपर्युक्त वर्णित कुछ पौधे राज्य की अर्थव्यवस्था को मजबूत करने की क्षमता रखते हैं इसलिए राज्य के आर्थिक विकास को बढ़ावा देने के लिए इस अमूल्य पादप सम्पदा का सुनियोजित उपयोग किया जाना चाहिए, जिससे बेरोजगार युवाओं को रोजगार प्राप्त होगा और वे आत्मनिर्भर बनेंगें। कुछ पौधों का उपयोग सिंथेटिक प्लास्टिक उत्पादों के विकल्प के रूप में किया जा सकता है जिससे प्लास्टिक प्रदूषण कम होगा। इसलिए इस लेख के माध्यम से यहाँ के स्थानीय बाजारों में मिलने वाले कुछ अच्छे खाद्य, औषधीय और अन्य उपयोगी पौधों की जानकारी दी गई है जिन्हें हम अपने दैनिक जीवन में अपना सकते हैं, जिससे अपने स्वास्थ्य के साथ-साथ पर्यावरण को भी बेहतर बना सकते हैं।

उत्तराखंड के थारू व भोक्सा जनजातियों द्वारा प्रयुक्त वनस्पतियों एवं उनके उपयोग से संबंधित पारंपरिक ज्ञान में निरंतर कमी का एक अध्ययन

हरीश सिंह

भारतीय वनस्पति सर्वेक्षण, उत्तरी क्षेत्रीय केन्द्र, देहरादून

देव भूमि के नाम से विख्यात उत्तराखंड राज्य में विभिन्न वर्ग के जातियों के साथ पाँच आदिवासी (जन-जाति) समुदाय के लोग सदियों से निवास करते हैं। जिन्हें भोटिया, वन रावत (राजी), जौनसारी, थारू तथा भोक्सा के नाम से जाना जाता हैं। इनमे से थारू व भोक्सा जनजाति के लोग राज्य के उधम सिंह नगर, देहरादून और पौड़ी जनपद के मैदानी, तराई तथा भाबर क्षेत्र में निवास करते हैं। ये लोग अपने को राजस्थान के मूल निवासी और राज घराने के वंशज मानते हैं। थारू लोग अपने को भोक्सा से अधिक विकसित और उच्चतर स्तर का मानते हैं। और इन जातियों के लोगों की आपस में रिश्तेदारी या शादी-विवाह भी बहुत कम होती है। देहरादून जिले के डोईवाला, विकास नगर तथा सहसपुर विकास खंड के भोक्सा लोग स्वयं को महारा भोक्सा कहते हैं।

सदियों से ये जन-जातियाँ जंगलों के नजदीक निवास करने के कारण वहाँ पर उपलब्ध पेड़-पौधों के विभिन्न भागों से अपने दैनिक जरूरतों की आपूर्ति करते आ रहें हैं। चाहे वह रहने के लिए घर हो या पेट भरने के लिए कंद-मूल फल हो या उनके बीमारियों के उपचार के लिए जड़ी-बूटी हो, सभी वस्तुओं की पूर्ति स्थानीय जंगलों से उपलब्ध वनस्पतियों को एकत्र कर उनका उपयोग करते थे और इन लोगों को इन पेड़-पौधों के उपयोगों की सटीक जानकारी अपने पूर्वजों से विरासत में मिलती थी और ये लोग उस पारंपरिक ज्ञान को एक पीढ़ी से दूसरी पीढ़ी को बढ़ाते जाते थे। किन्तु दुर्भाग्य से वर्तमान पीढ़ी के युवा वर्ग के लोग इन बहुमूल्य पारम्परिक ज्ञान को उपयोग करने तथा इसे अगली पीढ़ी को हस्तांतरित करने में दिलचस्पी नहीं दिखाने के कारण इस प्रकार के ज्ञान का दिन प्रति दिन ह्रास होता जा रहा है। लेखक ने इन क्षेत्रों का लोक वानस्पतिक अध्ययन का कार्य 1988-1991 तक किया था और 32 वर्षों बाद उसी क्षेत्र में पुनः सर्वेक्षण कर पाया कि अब वह पारम्परिक ज्ञान लगभग ख़त्म होने के कगार पर आ चुका है। तीन दशक पूर्व 50-60 जनसंख्या वाले एक गाँव में 10-20 जानकार महिला/ पुरुष अवश्य मिलते थे किन्तु आज 10-20 गांवो में भ्रमण करने के पश्चात मुश्किल से 1-2 जानकार लोग ही मिल पाते हैं इसी तरह अगर हम ओर पीछे अर्थात 50-60 साल पहले की बात करें तो हर गाँव में 70-80 प्रतिशत लोग इन जंगलों के वनस्पतियों के उपयोगिता की सम्पूर्ण जानकारी रखते थे। अगर इसी दर से इनका ह्रास होता रहा तो आने वाले 10 साल बाद इन गांवों में एक भी जानकार व्यक्ति का मिलना दूभर हो जाएगा। इन दूरस्थ गावों में पुराने जानकार लोगों के मृत्यु के पश्चात अब नई पीढ़ी को उपयोग के जानकारी तो दूर उन्हें इन उपयोगी पेड़-पौधों के स्थानीय नाम तक का ज्ञान नहीं रह गया है। इस प्रकार से आने वाले समय में इन आदिवासीय क्षेत्रों में भी वनस्पतियों के उपयोग की जानकारी मिलने की सम्भावनायें भी धीरे-धीरे ख़त्म होती जा रही हैं और एक दिन ऐसा भी आएगा जब वनस्पतियों से सम्बंधित एक भी पारंपरिक ज्ञान इन क्षेत्रों से नहीं मिलेगा। अतः आज की तिथि में जो भी मौखिक पारंपरिक ज्ञान इन क्षेत्रों में बचा हुआ है उनको तुरंत एकत्र कर उसे लिपिबद्ध कर संरक्षित करने का भरपूर प्रयास करना होगा जिससे भविष्य में इन अभिलेखों के आधार पर शोध कार्य कर इनकी वैज्ञानिक पुष्टि की जा सके और उस आधार पर मानव कल्याण हेतु नये खाध्य पदार्थों तथा नये औषधियों की खोज हो सके।

यह सर्व विदित है कि आज पूरे विश्व में इसी प्रकार के पारम्परिक ज्ञान के आधार पर ही कई नये-नये खाद्य, औषधि तथा अन्य उपयोगी पदार्थों की खोज संभव हो पाई है। उदहारण के लिए जैसे सिनकोना आफीसिनेलिस से मलेरिया रोधक 'क्विनीन', एफिडरा सिनिका से श्वास रोधक 'एफ़ीडीरिन', एट्रोपा बेलाडोना से 'एट्रोपिन', बर्बेरिस वलगेरिस से वेक्टेरिया रोधक 'बर्बेरिन', कैथेरेन्थेस रोजीउस से केंसर रोधक 'विनब्लासटिन' तथा 'विन्क्रिस्टीन', पेपेवर सोमिनिफेरुम से पीड़ा नाशक 'मॉर्फिन', रावुल्फिया सेर्पेंटीना से निम्न रक्त चाप के लिए 'रेसर्पिन', टेक्सस ब्रेविफोलिया से केंसर नाशक 'टेक्सोल' आदि बहुमूल्य औषधिय तत्वों की खोज भी पारंपरिक ज्ञान के आधार पर ही हुई है।

इस अध्ययन के दैरान यह भी पाया गया कि पूर्व में इन क्षेत्रों में जो नैसर्गिक वन व उपयोगी पेड़-पौधों की जातियां बहुतायत में मिलती थी अब उनकी संख्याँ में या तो बहुत कमी आ गई हैं या लगभग ख़त्म ही हो चुके हैं। पुरानी पीढ़ी ने जिन देशी जातियों जैसे ढ़ाक (बूटिया मोनोस्पेर्मा), पुत्रंजीव (पुत्रन्जिवा रोक्सबरगी), कुसुम (*स्क्लीचेरा ओलिओसा*) कन्जू (*होलोप्टीलिया इन्टीग्रिफोलिया*), चामरोर (*एहरेशिया लेविस*), चिला (*वेंडलेनडिया हेय्नी*), जामुन (*सिजिजियम कुमिनी*), तुन (*सिड्रेला तूना*), तेंदू (*डिओस्प्योस एक्सुल्पलटा*), निम्बू (*सिट्रस मेडिका*), पाडल (*स्टीरिओस्पेर्मम चिलोनोइडस*), फलदू (*मित्रागायिना परविफोलिया*), हल्दू (*हल्दिना कोरडीफोलिया*), बहेड़ा (*टर्मिनेलिया बिलेरिका*), हरड़ (*टर्मिनेलिया छेबुला*), साल (*शोरिया रोबुस्टा*), बीजासाल (*टेरोकार्पस मार्सुपियम*), भिलावा (*सेमिकार्पस एनाकार्डियम*), भीमल (*ग्रिविया ओप्टीवा*), महुवा (*मधुका लोंगिफोलिया*), शीशम (*डल्वेर्जिया सिशू*), सादन (*उजिनिया ऊजेनेंसिस*) आदि को घर या गाँव के आस पास संरक्षित किया था उन्हें भी नई पीढ़ी के लोग विकास के नाम पर काट कर नष्ट कर चुके हैं। उनकी जगह पर अब सड़क के किनारे वन विभाग द्वारा रोपित विदेशी पेड़ जैसे यूकेलिप्टस, केशिया, ब्रोसोनेशिया, मिमोसा, एल्बिजिया, अकेशिया, एल्स्टोनिया आदि की जातियों को देखा जा सकता है। धार्मिक स्थलों के आस पास लोक-विश्वास के कारण लगाये व संरक्षित किये गए पेड़-पौधों जैसे बरगद (*फायिकस बेन्गालेंसिस*), पीपल (*फायिकस रिलीजिओसा*), बेल (*एइगल मार्मिलोस*), आम (*मेंजिफेरा इंडिका*), वरुण (*क्रेटीवा रिलीजिओसा*), इमली (*टेमेरिन्डस इंडिका*), आमला (*फायिलेंथस एम्बिलिका*), सेमल (*बोम्बक्स सीबा*) आदि की संख्या में भी कई स्थानों पर कमी देखी गयी हैं।

औषधीय पौधे जैसे ब्रह्मी (*बेकोपा मोनेरायी*), मंडूक-पर्णी (*सेनटिला एशिएटीका*), बच्छ (*एकोरस केलेमस*), इंद्र-जौ (*रायिटिया टोमंटोसा*), कूड़ा (*होलेर्हीना पब्सेंस*), मैदा (*लिट्सिया ग्लुटीनोसा*), रोहिणी (*मेलोटस फिलिपेंसिस*), हर-सिंगार (*निक्टेनथस आर्बोर-ट्रीस्टिस*), आक (*केलोट्रोपिस प्रोसेरा*), आमला (*फायिलेंथस एम्बिलिका*), हरड़ (*टर्मिनेलिया छेबुला*), बहड़ (*टर्मिनेलिया बिलेरिका*), गंधेला (*मुराया कोईनिगी*), दैया (*केलिकार्पा मेक्रोफिला*), वसिंगा (*जस्टीसिया अधेतोडा*), सिमालू (*वाईटैक्स नेगुन्ड़ो*), सतावर (*एस्पेरागास रेसिमोसस*), सफ़ेद मूसली (*क्लोरोफायटम टुबरोसम*), काली मूसली (*कुरकुलिगो ऑर्किओइडस*), गिलोय (*टिनोस्पोरा कोरडीफ़ोलिया*), मॉल कगनी (*सिलेसट्रस पेनिकुलेटस*), जल-जमनी (*सिसेमपेलोस पेइरिरा*), दूधी (*युफोर्बिया हिरटा*), काली-बेल (*वेंटीलागो डेन्टीकुलेटा*), बला (*सियिडा कोर्डीफोलिया*), महा-बला (*सियिडा रोहम्बिफोलिया*), राज-बला (*सियिडा कोर्डेटा*), राम-दातोन (*स्माइलैक्स मेक्रोफिला*), बाना (*डेन्डरोफ्थी फल्केटा*), पुनर्नवा (*बोअरहिवा डीफुजा*), वन-हल्दी (*कुरकुमा अमाडा*), नगर-मोथा (*साइप्रस रोतुंडा*), नीलकंठ (*एलिफेन्टोपस स्केबर*), चिल्मोरा (*ओक्सालिस कोर्निकुलेटा*), दुधी बेल (*हेमिडेसमस इंडिकस*), छुई-मुई (*मायीमोसा पुडिका*), अकरकरा (*स्पायिलेंथस कालवा*) जोंक-मारी (*एनागेलिस आर्वेंसिस*), जल-पिपली (*फाईला न्युड़ीफ्लोरा*), भ्यूं-आमला (*फायिलेंथस फरेट्रनस*)

पुरानी पीढ़ी की थारू महिलाएं

नई पीढ़ी की थारू महिलाएं

आदि की संख्या भी बहुत कम दिख रही है।

जंगली खाए जाने वाली वनस्पतियाँ जैसे गेठी (*डाईस्कोरिया बल्बिफेरा*), तरालू (*डाईस्कोरिया बिलोफिला*), बेर (*जिजिफस मौरिटीआना*), झर-बेर (*जिजिफस नुमुलेरिया*), बेल (*एइगल मार्मिलोस*), हिसालू (*रूबस निवेउस*), वन-गेठी (*डाईस्कोरिया पेंटाफिल्ला*), आमला (*फायिलेंथस एम्बिलिका*), खडीक (*सेल्टीस ऑस्ट्रालिस*), जंगली जामुन (*सिज़िजियम सेलिसिफोलियम*), गूलर (*फायिकस ग्लोमेरेटा*), बेडू (*फायिकस पामेटा*), गोली (*ब्राइडीलिया रिटुसा*), खोदा (*एहरेसिया लेविस*), फारसें (*ग्रिविया सेपिडा*), भिलावा (*सेमिकार्पस एनाकार्डियम*), भीमल (*ग्रिविया ओप्टीवा*), महुवा (*मधुका लोंगिफोलिया*), सजना (*मोरिंगा ओलीफेरा*), आमली (*एन्टीडेस्मा एसिडियम*), करोंधा (*केरिस्सा स्पिनेरुम*), पीलू (*गलाईकोस्मिस पेंटाफिला*), माल्झन (*बौहिनिया वाह्ली*), कुंदरू (*कुक्सिनिया ग्रान्डीस*), लिंगोड़ा (*डीप्लेंजियम एस्कुलेंटम*), मकोय (*सोलेनम नाईग्रम*), पचनाला (*फ्लेकोर्टिया इंडिका*) आदि भी धीरे-धीरे कम होने लगी है।

पुरानी पीढ़ी की भोक्सा महिला

बहु उपयोगी घास जाति के पौधे जैसे उलसू (*थाय्सोलेअना मेक्सिमा*), सरकंडा (*थेमेडा अरुन्डीनेसिया*), कांस (*सेक्केरम स्पोंटेनियम*), कुमैरिया (*हेट्रोपोगोंन कोंटोर्टस*), गोरिया (*क्रासोपोगोंन फुल्वस*), खस (*वेटिवेरिया ज़िज़िनोइडस*), पूला (*इम्पेरेटा सीलिंडरीका*), नल (*अरुन्ड़ो डोनेक्स*), नरकूल (*फ्रागमिटीस कार्का*), पाटा (*टाइफा एलिफ़ेन्टीना*), सबई (*युलेलोप्सिस बाईनाटा*), मूंज (*सेक्केरम बेन्गालेंसिस*), दबहेना (*डेस्मोस्टेचिया बैपिन्नेटा*) आदि की संख्या भी पहले की अपेक्षा काफी घटी है। इनके अतिरिक्त बांस के प्रजाति, लता प्रजाति तथा परजीवी जाति के पौधों के उपलब्धता में भी भरी कमी महसूस की गयी है।

नई पीढ़ी की भोक्सा लड़कियां

वास्तव में वनस्पति विविधता के ह्रास के साथ-साथ इन लोगों के वर्तमान रहन-सहन पर भी बहुत बदलाव आ गया है। पहले आदिवासीय गांवो में अधिकाँशतः मिट्टी के बने घर जिनके ऊपर घास-फूस की छत होती थी किन्तु अब इन के स्थान पर सीमेंट व सरिया से बनी पक्की सुन्दर बिल्डिंगे दिखने लगे हैं जिनके गेट के अन्दर चार पहिया वाहन, मोटर वाईक, ट्रेक्टर आदि भी आसानी से देखे जा सकते हैंद्य। अब इनके क्षेत्र में बिजली, पानी, सड़क की सुविधा, रसोई घर में कुकिंग गैस, इलेक्ट्रोनिक उपकरण आदि तो सामान्य सी बात हो गई है। शिक्षा, सरकारी रोजगार की प्रतिशतता भी पूर्व की अपेक्षा कई गुना बढ़ गई है।

किन्तु अगर इसी गति से आदिवासी क्षेत्रों से इन पेड़-पौधों तथा इनसे सम्बंधित पारंपरिक ज्ञान का ह्रास होता रहा तो वह दिन दूर नहीं जब हम लोगों के पास प्रायश्चित करने के अतिरिक्त कोई उपाय नहीं होगा। अतः अभी भी समय है कि जो भी और जितना भी ज्ञान इन आदिवासीय क्षेत्रों में बचा है उन्हें प्राथमिकता के आधार पर एकत्र कर लिपिबद्ध कर उन्हें सरंक्षित करने का अथक प्रयास करना चाहिए ताकि इस प्रकार के ज्ञान का वैज्ञानिक सत्यापन करने के उपरांत नई खाद्य, औषधि तथा अन्य उपयोगी गुणों की खोज कर भविष्य में इन वनस्पतियों का जनहित में प्रयोग कर सके।

बिहार में झाड़ू बनाने में उपयोग होने वाले कुछ प्रमुख पौधे

मोनिका मिश्र, पंकज ढोले, हरीश सिंह* एंव के अल्ताफ अहमद कबीर

भारतीय वनस्पति सर्वेक्षण, हावड़ा
*भारतीय वनस्पति सर्वेक्षण, देहरादून

लोक वनस्पति, वनस्पति विज्ञानं की एक बहुत ही महत्वपूर्ण शाखा है जिसमे पेड़-पौधों का स्थानीय निवासियों तथा जन-जातियों द्वारा उपयोगों के बारे में अध्ययन किया जाता है। वास्तव में, आज के इस आधुनिक युग में भी बहुत सी आदिम जन-जातियां ऐसी हैं जो आज भी अपनी खाद्य, प्राथमिक स्वास्थ्य सम्बन्धी और अन्य दैनिक जरूरतों जैसे चारा, रस्सी, ईंधन, तेल, पेय पदार्थ, गोंद, रेजिन, रंग, टोकरी, लकड़ी और लकड़ी के सामान, संगीत वाद्ययंत्र इत्यादि के लिए वनस्पतियों की विभिन्न जातियों का उपयोग सदियों से करती आ रही हैं। उन्हें इस तरह के कई पौधों की जातियों की उपयोगिता के बारे में ज्ञान है, जिनसे नई पीढ़ी के लोग अनभिज्ञ हैं| लोक वनस्पति वेज्ञानिकों द्वारा ऐसे जंगली पौधों के पारंपरिक उपयोगों की जानकारी एकत्र कर उन्हें लिपिबद्ध किया जाता है। हालांकि, शहरीकरण, तेजी से औद्योगीकरण और जीवन के बदलते स्वरुप के कारण आदिवासी संस्कृति भी तेजी से बदल रही है। अतः इस प्रकार के ज्ञान को स्थानीय वनस्पतियों के विभिन्न भागों से झाड़ू बनाना भी एक ऐसा ही उपयोग है जिनका उपयोग प्राचीन काल वर्तमान तक महलों, गुफाओं, सड़कों और घरों के अंदर तथा बाहर की सफाई के लिए प्रयोग की जाती रही है हालाँकि अब कृत्रिम रेशे वाली झाड़ू भी बाजार में उपलब्ध हैं फिर भी परंपरागत रूप से पेड़–पौधों से बनी हुई झाड़ुओं का ही प्रयोग अधिक किया जाता है। झाड़ू अत्यधिक उपयोग किए जाने वाले घरेलू उपकरणों में से एक है और कई रूपों में मौजूद है। कई समुदायों में धार्मिक अनुष्ठानों तथा शादी विवाह की कुछ रस्मों में भी इसका उपयोग किया जाता है। हालाँकि आज कल घरों की साफ़ - सफाई के लिये अनेक प्रकार के उपकरण और तरह की कृत्रिम रेशे से बनी झाड़ू बाज़ार में उपलब्ध हैं परन्तु आज भी घरों और प्रतिष्ठानों की सफाई में पौधों से बनी झाड़ू ही मुख्य भूमिका निभाती है। हर भारतीय घर में घास की झाड़ू एक महत्वपूर्ण हिस्सा है। झाड़ू भारतीयों के धार्मिक मान्यताओं में भी स्थान रखती है। हिन्दू धर्म में झाड़ू को लक्ष्मी का रूप माना गया है और उसी के अनुसार झाड़ू का भी रख रखाव करने की प्रथा है। बड़े बुजुर्ग मानते हैं कि सुबह - सुबह झाड़ू से घर की सफाई करने से नकारात्मक ऊर्जा का नाश होता है और घर में खुशहाली आती है, साथ ही साफ़ घर में लक्ष्मी का वास भी होता है। झाड़ू बनाने के लिए पेड़ –पौधों की शाखाओं, फूलों, पुष्पक्रम और घासों का उपयोग किया जाता है। आसानी से बांधने के लिए धागे या पौधे के रेशे का उपयोग किया जाता है। बिहार के आदिवासी क्षेत्रों में झाड़ू बनाने के लिए कच्चा माल मुख्यतः महिलाओं द्वारा जंगलों से एकत्र किया जाता है। अलग - अलग जगह की सफाई के लिए अलग-अलग तरह की झाड़ू का उपयोग किया जाता है और फिर उसी के अनुसार पौधों को चुना जाता है। घास के झाड़ू पर्यावरण के अनुकूल और बायोडिग्रेडेबल तो होते हीं हैं, साथ ही ये आदिवासी समुदायों के लिए रोजगार का साधन भी उपलब्ध कराते हैं। स्थानीय बाज़ार में यह 10/- से 30/- रुपये प्रति पीस के हिसाब से बेची जाती है। भारत में प्रतिवर्ष बड़ी मात्रा में झाड़ू का उपयोग किया जाता है जो अधिकांश घास, ताड़ और बांस से बने होते हैं।

प्रस्तुत लेख में बिहार के घनी जनजातीय आबादी वाले जिलों (अररिया, औरंगाबाद, बांका, गया, जमुई, कैमूर, कठियार, किशनगंज, नालंदा, नवादा, पूर्णिया, रोहतास और पश्चिम चंपारण) में लोक वानस्पतिक सर्वेक्षण के दौरान झाड़ू बनाने में उपयोग किये जाने वाले पौधों का उल्लेख किया है। इस अध्ययन का उद्देश्य पारंपरिक रूप से झाड़ू के रूप में उपयोग किए जाने वाले पौधों से आम जन-साधारण को परिचित करना है, क्योंकि आज के इस भौतिकता के दौर में यह ज्ञान धीरे-धीरे विलुप्त होता जा रहा है। यह व्यवसाय बिहार में आदिवासी महिलाओं के सामाजिक उत्थान के लिए भी उपयोगी है। इस अध्ययन के दौरान एकत्रित किये गए पौधों का वानस्पतिक नाम, कुल, स्थानीय नाम, सम्बंधित जिलों के नाम, प्रकृति तथा उपयोगी भागों का विवरण निम्न तालिका में दिया जा रहा है।

1. *एरिस्टिडा सेटेसिया*; 2. *बोरसस फ्लेबेलिफ़र*; 3. *कैलेमस टेनुइस*; 4. *ग्रेविया हिरसुता*; 5. *इंडिगोफेरा कैसियोइड्स*;6. *फीनिक्स एकौलिस*; 7. *फीनिक्स सिल्वेस्ट्रिस* एवं 8. *थाइसेनोलीना लैटिफोलिया*

1. आदिवासी महिलायें झाड़ू बनाने के लिए घास एकत्रित करते हुए; 2. झाड़ू बनाने के लिए पत्तियां सुखाकर टहनियां अलग करते हुए; 3-4. आदिवासी लोग झाड़ू बनाते हुए; 5. पौधे को सूखने के बाद बनी हुई झाड़ू; 6. आदिवासी महिला झाड़ू लगाते हुए एवं 7-8. हाट में बिकती हुई झाड़ू

क्रम संख्या	पौधे का वानस्पतिक नाम	कुल	स्थानीय नाम	जिलों के नाम	प्रकृति	उपयोगी भाग
1	*एरिस्टिडा सेटेसिया*	पोएसी	खरबदन	कैमूर	शाक	पुष्पक्रम
2	*बोरसस फ्लेबेलिफ़र*	ऐरीकेसी	ताड़	औरंगाबाद, बांका, गया	पेड़	पत्तियां
3	*कैलेमस टेनुइस*	ऐरीकेसी	बेंत	पश्चिम चम्पारण	लता	पत्तियां
4	*फ्लेमिंगिया स्ट्रोबिलीफेरा*	लेग्यूमिनोसी	गलफुली, कनानी झांग, टिकुलिआ	पश्चिम चम्पारण	झाड़ी	संपूर्ण पौधा
5	*ग्रेविया हिरसुता*	माल्वेसी	बन भुजा, बन मुसरी, भुजानी, कटेली	पश्चिम चम्पारण, बांका	झाड़ी	टहनियाँ
6	*इंडिगोफेरा कैसियोइड्स*	लेग्यूमिनोसी	बनैली, बिहुली, बिरहुली, बिरुली	रोहतास, पश्चिम चम्पारण	झाड़ी	टहनियाँ
7	*फीनिक्स एकौलिस*	ऐरीकेसी	डुमरांव, खजूर	कैमूर, पश्चिम चम्पारण	झाड़ी	पत्तियां
8	*फीनिक्स सिल्वेस्ट्रिस*	ऐरीकेसी	खजूर, खेजुर, खेजुरी	अररिआ, औरंगाबाद, गया, जमुई	पेड़	पत्तियां
9	*साइडा एक्युटा*	माल्वेसी	खरहर, बरियार, बैरियर, बर्बरी	अररिआ, गया, जमुई, पूर्णिआ, रोहतास, पश्चिम चम्पारण	शाक	संपूर्ण पौधा
10	*थाइसेनोलीना लैटिफोलिया*	पोएसी	बसेड़ी, छोटा बांस	पश्चिम चम्पारण	शाक	पुष्पक्रम
11	*ट्रायम्फेटा रॉमबॉइडिया*	माल्वेसी	चिकि	बांका	शाक	संपूर्ण पौधा

होली के रंग फूलों के संग

देबस्मिता दत्ता प्रमाणिक

भारतीय वनस्पति सर्वेक्षण, कोलकाता

होली को मूल रूप से 'होलिका' के नाम से जाना जाता है। इस उत्सव का नाम दानव राजा हिरण्यकश्यप की बहन के नाम पर रखा गया था। यह उत्सव रंग, उल्लास और मस्ती के प्राचीन भारतीय त्योहारों में से एक है और भगवान कृष्ण के साथ जुड़ा हुआ है। इस त्योहार को 'फसल के त्योहार' के रूप में भी मनाया जाता है। यह धार्मिक त्योहार फाल्गुन मास (बसंत) की पूर्णिमा के दिन भारत के विभिन्न कोनों में एक दूसरे को सुगंधित उज्ज्वल रंगों का छिड़काव करके मनाया जाता है। माना जाता है कि वसंत ऋतु में सर्दियों से गर्म मौसम में बदलाव से कुछ बीमारियां होती हैं जैसे चेचक, खांसी और जुकाम, वायरल फीवर आदि। रंग मानव शरीर के फिटनेस में महत्वपूर्ण भूमिका निभाते हैं और प्रतिरक्षा प्रणाली को मजबूत करने के साथ-साथ इसमें सुंदरता भी जोड़ते हैं। प्राचीन काल में 'टेसू', 'पलाश', 'हरसिंगार', 'मैरीगोल्ड', 'हिबिस्कस', 'गुलाब', 'नीम', 'हल्दी' आदि पौधों से प्राकृतिक रंग व्यापक रूप से

कैसिया फिस्टुला

डेलोनिक्स रेजिया

तालिका 1: रासायनिक रंग और मानव शरीर पर उनके विषाक्त प्रभाव

रंग	घटक	मानव शरीर पर प्रभाव
हरा	कॉपर सल्फेट	आंखों की सूजन, अस्थायी या स्थायी अंधापन
लाल	मर्क्यूरिक सल्फाइड / मर्क्यूरिक ऑक्साइड	त्वचा कैंसर, सिरदर्द, पक्षाघात, मानसिक असंतुलन, कमजोर दृष्टि, स्मृति हानि, कंपकंपी, निम्न रक्तचाप
गुलाबी	रोडामाइन बी	श्लेष्मा झिल्ली और त्वचा में जलन
बैंगनी	क्रोमियम आयोडाइड	ब्रोनंकियल अस्थमा, एलर्जी
नीला	प्रुशियान ब्लू	त्वचाशोथ
सिल्वर	एल्युमीनियम ब्रोमाइड	मानव कैंसरजन
काला	लीड ऑक्साइड	पेट दर्द, रक्ताल्पता, वृक्कीय विफलता
पीला	औरामाइन	गले और पेट में जलन, धुंधली दृष्टि, त्वचा की खुजली
गहरा हरा	मलाकाइट ग्रीन	फेफड़ों, आंखों और हड्डियों को नुकसान, जेनोटॉक्सिक कार्सिनोजन
ऑरेंज	रोडामाइन	कैंसर, जेनेटिक विकार
ग्लिटर	अभ्रक, सिलिका के धूल	आंख और त्वचा को नुकसान

कैसिया फिस्तुला

क्लिटोरिआ अलाटा

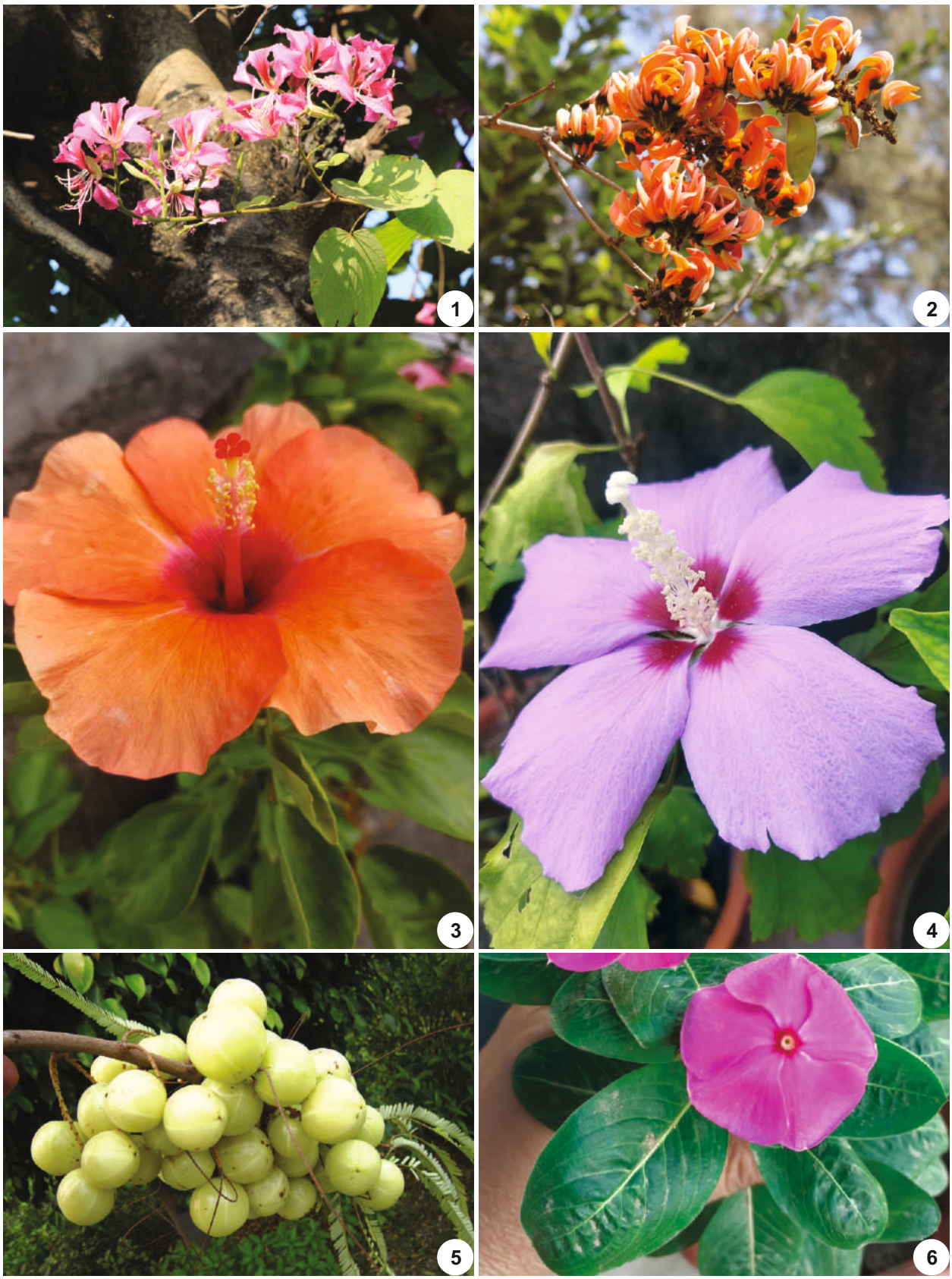

1.

1. *बौहिनिआ परपूरिआ*; 2. *ब्यूटिया मोनोस्पर्मा*; 3. *हिबिसकस-रोज़ा-सिनेन्सिस*; 4. *नीला हिबिसकस-रोज़ा-सिनेन्सिस*; 5. *फाइलेन्थस एम्ब्लिका* एवं 6. *कैथरैन्थस रोसियस*

तालिका 2: हर्बल रंग, प्रयुक्त पौधें और उपयोगी भाग

रंग	वानस्पतिक नाम	कुल	स्थानीय नाम	उपयोगी भाग
पीला	कुरकुमा लंगा	जिंजीबेरेसी	हल्दी	प्रकन्द/ भूमिगत तने
	कैसिया फिस्टुला	फैबेसी	अमलतास	फूल
	टैजेटेस इरेक्टा	एस्टरेसी	गेंडा	फूल
	एगल मार्मेलोस	रुटेसी	बेल	छिलका
	कैस्केबेला थेवेटिया	एपोसायनेसी	पीला ओलियंडर	फूल
	संटालम पैनिकुलाटाम	सैंटालेसी	पीला चंदन	चंदन पाउडर
हरा	लॉसनिया इनर्मिस	लिथ्रेसी	मेंहदी	पत्तियां
	डेलोनिक्स रेजिया	फैबेसी	गुलमोहोर	पत्तियां
	स्पिनैसीईए ओलेरासिया	ऐमरैंथेसी	पालक	पत्तियां
लाल	रोज़ा चीनेंसि	सरोज़ेसी	गुलाब	फूलों की पंखुड़ियां
	डेलोनिक्स रेजिया	फैबेसी	गुलमोहोर	फूल
	मलोटस फ़िलिपेंसिस	यूफोरबियासी	कमला	फल
	टेरोकार्पस सैंटालिनस	फैबेसी	लाल चंदन	लाल चंदन पाउडर
	पुनिका ग्रैनटम	पुनीकेसी	अनार	छिलका
	रोडोडेंड्रोन अर्बोरेटम	एरिकेसी	बुरांस	फूल
	ब्यूटिया मोनोस्पर्मा	फैबेसी	टेसू	फूल
	हिबिस्कस रोज़ा सिनेन्सिस	मालवेसी	गुड़हल	फूल
भूरा	सेनेगलिआ कटेचु	फैबेसी	खैर	कट्ठा
	कमेलिया साइनेसिस	थीएसीई	चाय	सूखी पत्तियां
	एसर रूब्रम	सैपिनडे	सीलाल मेपल	पत्तियां
मैजंटा	बौहिनिया परपूरिआ	फैबेसी	कचनार	फूल
	बीटा वुल्गारिस	ऐमरैंथेसी	चुक़ंदर	जड़
गुलाबी	कैथरैन्थस रोसियस	एपोसायनेसी	गुलाबी सदाबहार	फूल
	रोज़ा चीनेंसिस	रोज़ेसी	गुलाब	फूल
	मिराबिलिस जलापा	निक्टाजिनेसी	गुलबक्षी	फूल
नारंगी	निक्टेन्थेस आर्बर-ट्रिस-टिस	ओलिएसी	पारिजात	फूल के डंठल
	टर्मिनलिया चेबुला	कंब्रिटेसी	हरितकि/ हरड़/ हरे	फल
	क्रोकस सैटिवस	आईरिडेसी	केसर/ ज़ाफ़रान	पुंकेसर
काला	फाइलेन्थस एम्ब्लिका	फाईलान्थेसी	आंवले	उबले हुए सूखे फल
	वाइटिस विनीफेरा	वईटेसी	काला अंगूर	हुए सूखे फल
नीला	हिबिसकस-रोज़ा-सिनेसिस	मालवेसी	नीला गुड़हल	फूल
	जकरंदा मिमोसिफोलिया	बिगनोनिएसी	जकरंदा	फूल
	इंडिगोफेरा टिनक्टोरिया	फैबेसी	नील/ नीलिका	फूल

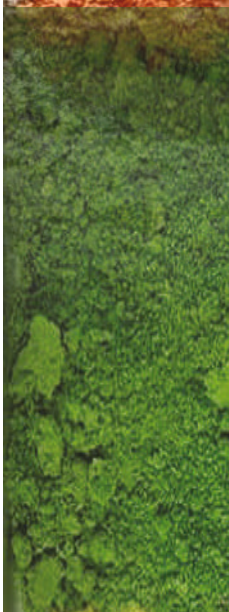

निकाले जाते थे। 1950 के दशक तक, सूखे फूलों का व्यापक रूप से 'गुलाल' बनाने के लिए उपयोग किया जाता था और गाढ़ा गहरे गीले रंग पाने के लिए उबाला जाता था। समय के परिवर्तन के साथ, हानिरहित, हर्बल रंगों का उपयोग छोड़ दिया गया और सस्ते, आसानी से उपलब्ध कृत्रिम रंगों द्वारा प्रतिस्थापित किया गया जो मानव शरीर के लिए अत्यधिक विषैले होते हैं। ये रासायनिक रंग पर्यावरण को गैर-अवक्रमणीय प्रदूषक प्रदान करते हैं जो जमा होते हैं और लंबे समय तक बने रहते हैं। बाजार में उपलब्ध कृत्रिम रंगों में हानिकारक रासायनिक यौगिक, भारी धातु, कांच की धूल, इंजन का तेल, डीजल और अन्य जहरीले घटक होते हैं जो त्वचा, आंखों, बालों, श्वसन पथ आदि के लिए हानिकारक और कैंसरकारी भी होते हैं (तालिका 1)।

वर्तमान दशक में, पर्यावरण संरक्षण अधिनियम (1986) को ध्यान में रखते हुए और हमारी जैव विविधता के साथ-साथ मानव जाति की रक्षा के लिए, सिंथेटिक रंगों के खिलाफ मजबूत आवाज उठाई गई है जिससे होली के उत्सव में पौधे आधारित रंगों के उपयोग में जोर दिया गया है। विभिन्न सरकारी संगठनों, गैर सरकारी संगठनों और व्यक्तियों ने हमारे आसपास के प्राकृतिक सूत्रों से हर्बल रंग बनाने की पहल की है। पौधों के विभिन्न हिस्सों से बने हर्बल रंगों का मानव शरीर पर आच्छा प्रभाव पड़ता है और त्वचा और बालों में चमक आती है (तालिका 2)।

सभी हर्बल रंग सूखे और गीले दोनों ही रूप में बनाए जा सकते हैं। शुष्क रंग तैयार करने के लिए विभिन्न प्रकार के फूलों या अन्य पौधों के हिस्सों को विभिन्न अनुपात में बेसन/अरारोट/टैल्कम पाउडर के साथ मिलाया जाता है। सूखे लाल रंग के लिए, लाल गुड़हल के फूलों को सुखाकर पीस लिया जाता है और मात्रा बढ़ाने के लिए चावल के आटे को बराबर मात्रा में मिलाया जाता है। सूखे पीले रंग के लिए हल्दी पाउडर को बेसन में 1:2 के अनुपात में मिलाया जाता है। हरे रंग का प्यारा गुलाल पाने के लिए मेहंदी पाउडर का इस्तेमाल किया जा सकता है। नीला गुलाल पाने के लिए सूखे नीले गुड़हल के फूल के पाउडर को चावल के आटे के साथ प्रयोग किया जाता है। गीले रूप के लिए,पानी से भरे अवयवों से कट्ठा या अर्क तैयार किया जाता है। खुशबू बढ़ाने के लिए गुलाब जल, केओड़ा जल, संतरे और नींबू का छिलका, लेमनग्रास ऑयल, चंदन पाउडर, वेनिला एसेंस आदि का उपयोग किया जाता है।

आम लोगों के बीच हर्बल रंगों की मांग को लोकप्रिय बनाने और बढ़ाने के विचार को बनाए रखने के लिए, अलग-अलग राज्य स्तर पर पहल की गई है। 2003 में एनबीआरआई, सीएसआईआर, लखनऊ के वैज्ञानिकों ने गेंदा, पलाश, गुड़हल आदि की सूखी पंखुड़ियों से प्राकृतिक रंगों की निष्कर्षण प्रक्रिया विकसित की। 2005 में कोलकाता के यादवपुर विश्वविद्यालय के केमिकल इंजीनियरिंग विभाग के वैज्ञानिकों और शोधकर्ताओं ने फूलों से जैविक रंग विकसित किए। देश भर में फूल बाजार से बिना बिके फूलों, मंदिर में समर्पित फूलों, पत्तियां आदि या तो नदी के पानी में फेंकी जाती हैं या कचरे के साथ फेंक दी जाती हैं जो पर्यावरण प्रदूषण का कारण बनते हैं। भारत के विभिन्न राज्यों में ऐसे जैविक अपशिष्ट उत्पादों से हर्बल रंग बनाने के लिए गांव की महिलाओं को लगाया जा रहा है। ग्रामीण महिलाओं को उनके आर्थिक सशक्तिकरण के लिए प्रोत्साहित करने के लिए आगे कदम बढ़ाते हुए कृषि विज्ञान केंद्र (केवीके) देहरादून, उत्तराखंड ने पर्यावरण के अनुकूल हर्बल रंग बनाने का पहल किया। 2019-2020 में, स्थानीय स्तर पर तकनीक को स्थानांतरित करने के लिए केवीके ने कई जागरूकता कार्यक्रम आयोजित किया। इन प्रशिक्षणों में हर्बल रंग तैयार करने की विधि को सरल रखा गया ताकि ग्रामीण महिलाएं इसे सीख सकें और उत्पादन कर सकें। भारत के विभिन्न राज्यों के गांवों की महिला समाज हाल के दशक में अग्रिम पंक्ति में आ गए है जिनमें से 'सेरीखेड़ी', 'सुधा', 'बिहान', 'जय गंगा मैया' आदि शामिल हैं। आजकल, प्रत्येक वर्ष में लगभग 5500 महिला स्वयं सहायता समूहों द्वारा 15,000 - 50,000 किलोग्राम से ज्यादा हर्बल रंग और गुलाल तैयार किया जा रहा है जो करीब 7-8 लाख रुपए में बिक रहा है। सस्ते सिंथेटिक रंगों को छोड़कर,कई लोग पर्यावरण के अनुकूल और रासायनिक मुक्त रंगों का चयन कर रहे हैं। कई उपभोक्ता हर्बल रंग मांग रहे हैं और कुछ रुपये अतिरिक्त देने को तैयार हैं क्योंकि यह त्वचा को नुकसान नहीं पहुंचाता है। हर्बल रंगों की कीमत ₹ 200 से ₹ 750 प्रति 100 ग्राम तक होती है, जबकि रासायनिक रंगों की कीमत ₹20 और ₹80 प्रति 100 ग्राम के बीच होती है। हालांकि इस तरह के रंगों की मांग में काफी वृद्धि हुई है, लेकिन रासायनिक रंग की कंपनियों के विज्ञापनों ने मौसमी घरेलू व्यवसाय को बुरी तरह प्रभावित किया है। इस तरह के हर्बल रंगों का उपयोग न केवल मानव जाति को बचाता है बल्कि प्रदूषण की संभावना को कम करता है, हमारे पर्यावरण की रक्षा करता है और जैव विविधता का संरक्षण करता है।

शैवाल अनुसंधान के क्षेत्र में प्रो. पी. सी. सिल्वा (1922-2014) का योगदान

सुधीर कुमार यादव

भारतीय वनस्पति सर्वेक्षण, मुख्यालय, कोलकाता

प्रोफेसर पॉल क्लाउड सिल्वा एक प्रसिद्ध अमेरिकी शैवालविद थे। उनका जन्म अमेरिका के कैलिफोर्निया शहर में 31 अक्टूबर 1922 को हुआ था। प्रोफेसर सिल्वा विश्व के आधुनिक शैवालविदों में से एक थे। उन्होंने शैवालों, विशेषकर समुद्री शैवाल के अनुसंधान के क्षेत्र में महत्वपूर्ण भूमिका निभाई। प्रो. सिल्वा की कॉलेज की पढ़ाई यू.एस.ए. में यूनिवर्सिटी ऑफ साउथ कैलिफोर्निया एवं स्टैनफोर्ड यूनिवर्सिटी में हुई जबकि डॉक्टरेट की पढ़ाई वर्ष 1952 में यूनिवर्सिटी ऑफ कैलिफोर्निया में प्रोफेसर गिलबर्ट मोरगन स्मिथ के मार्गदर्शन में हुई। अपनी पढ़ाई के दौरान द्वितीय विश्व युद्ध शुरू हो जाने के कारण कुछ समय की लिए वह अमेरिकी नेवी में भी शामिल हुए। अपने अध्ययन के बाद वर्ष 1952 में यूनिवर्सिटी ऑफ इलिनॉइस में वनस्पति विज्ञान विभाग में प्रोफेसर नियुक्त हुए। फिर वर्ष 1960 में यूनिवर्सिटी ऑफ कैलिफोर्निया के यूनिवर्सिटी हरबेरियम में क्यूरेटर के पद पर नियुक्त हुए और लंबे समय तक इसी विश्वविद्यालय में एवं पादपालय में अपनी सेवाएं दी।

प्रोफेसर पी. सी. सिल्वा का समुद्री शैवाल अनुसंधान में योगदान:

प्रोफेसर सिल्वा का मुख्य अनुसन्धान समुद्री शैवालो पर था। शैवाल के क्षेत्र में उनका पहला प्रकाशन *हाइड्रोबायोलोजिया* जर्नल में वर्ष 1950 में हुआ था। उन्होंने प्रशांत महासागर स्थित गालापागोस द्वीप से भी दो वैज्ञानिक अभियान (1964 एवं 1974) में भाग लिया। लेकिन उन्होंने वैश्विक स्तर पर अपनी पहचान एक हरे शैवाल वंश *कोडियम* के विशेषज्ञ के रूप में बनायीं। प्रो. सिल्वा ने *कोडियम* की लगभग 36 नई जातियों की खोज की। शैवाल अनुसंधान के क्षेत्र में प्रो. सिल्वा ने अनेक पुस्तकें एवं अनुसंधान पत्रिकाएं प्रकाशित की। उन्होंने लगभग 800 से भी ज्यादा नए शैवाल का नामकरण किया। उनके योगदान को देखते हुए बहुत से शैवालों की वंशो (जेनेरा) और प्रजातियों (स्पेसीज) का नाम उनके नाम पर रखा गई है, जैसे *पॉलसिलवेल्ला*, *सिल्वानेल्ला*, *सिलवेटिया* इत्यादि। उन्होंने 100 से भी ज्यादा शोध एवं अनेक पुस्तकों का प्रकाशन किए। प्रो. सिल्वा द्वारा शैवाल अनुसन्धान के क्षेत्र में प्रकाशित कुछ प्रमुख योगदान निम्नलिखित है:

- ***इंडेक्स नॉमिनम अल्गारम*:** प्रोफेसर सिल्वा ने यूनिवर्सिटी ऑफ कैलिफोर्निया बर्कले, यू.एस.ए. में "सिल्वा सेंटर फॉर फाईकोलॉजिकल डॉक्यूमेंटेशन" की स्थापना की। उनके सफल नेतृत्व में इस सेंटर द्वारा सन 1949 में शुरू किया गया एक वृहद डेटाबेस प्रोजेक्ट है जिसमें सभी तरह के शैवालो (जीवित एवं जीवाश्म) के वैज्ञानिक नाम और उनके संदर्भ (रेफरेंसेस) को इंडेक्स फॉर्म में इकट्ठा करने का लक्ष्य रखा गया था। इस इंडेक्स डेटाबेस में लगभग 20000 से भी ज्यादा शैवालो के वैज्ञानिक नाम एवं लगभग 65000 से भी ज्यादा रेफरेंसेस उपलब्ध है। आज यह डेटाबेस पूरी तरह से डिजिटाइज्ड है एवं शोधकर्ताओं के लिए उपलब्ध है (https://ucjeps.berkeley.edu/) जिसका प्रबंधन "सिल्वा सेंटर फॉर फाईकोलॉजिकल डॉक्यूमेंटेशन" की द्वारा किया जाता है। अतः इस डेटाबेस का विकास प्रोफेसर सिल्वा के अनेक सराहनीय योगदानो में से एक है।
- **कैटलॉग ऑफ दी बेन्थिक मरीन अल्गी ऑफ़ दी इंडियन ओसियन:** यह पुस्तक एक बहुत ही महत्वपूर्ण सन्दर्भ पुस्तक है

जो यूनिवर्सिटी ऑफ कैलिफोर्निया प्रेस द्वारा वर्ष 1996 में प्रकाशित की गई थी। इस प्रकाशन को तैयार करने में लगभग 19 वर्ष का लम्बा समय लगा। इसमें हिंद महासागर में पाए जाने वाले लगभग 35000 से भी ज्यादा समुद्री शैवालों के रिकॉर्ड एवं 4000 से भी ज्यादा अलग-अलग रेफरेंसेस का वर्णन किया गया है। इसमें भारत सहित हिंद महासागर के सभी देशों में पाए जाने वाले समुद्री शैवालों का वर्णन किया गया है, इसमें कुल 639 वंशो (जेनेरा) एवं 3355 स्पेसीज / सबस्पेसीज का वर्णन किया गया है (https://www.ucpress.edu/)।

- **कैटलॉग ऑफ दी बेन्थिक मरीन अल्गी ऑफ़ दी फिलिपींस:** यह पुस्तक स्मिथसोनियन इंस्टीट्यूशन प्रेस द्वारा 1987 में प्रोफेसर सिल्वा द्वारा प्रकाशित किया गया था। इसमें लगभग 972 शैवालों की प्रजातियां एवं 209 वंशो का विवरण किया गया है। इसमें हरे शैवाल की 61 प्रजातियां, लाल शैवाल की 506 प्रजातियां, भूरा शैवाल की 154 प्रजातियां एवं हरा शैवाल की 251 प्रजातियां को सम्मिलित किया गया है (https://repository.si.edu/)।

- **अनोटेटेड कैटलॉग ऑफ *स्कैनडिस्मिस* एंड नोमेनक्लेटरॉय नोमेनक्लचरली रिलेटेड जेनेरा इन्क्लूडिंग ओरिजिनल डिस्क्रिप्शन एंड फिगर:** इसे हेगेवल्ड एवं प्रो. सिल्वा ने 1988 में अपने बिब्लिओथेका फीकोलोगिका में प्रकाशित किया था।

इसके अलावा, प्रोफेसर सिल्वा अनेक वैश्विक अनुसंधान संस्थान में सदस्य थे। उन्होंने *इंटरनेशनल फाईकोलॉजिकल सोसाइटी* की स्थापना में महत्वपूर्ण भूमिका निभाई। उन्होंने कई प्रमुख पत्रिकाओं (जर्नल्स) जैसे *फाइकोलोजिया*, *बॉटनिका मरीना*, *जर्नल ऑफ़ फाइकोलॉजी*, *यूरोपियन जर्नल ऑफ़ फाइकोलॉजी* इत्यादि में संपादक, सहायक संपादक, संपादक सदस्य इत्यादि स्तर पर अपना योगदान देते रहे। प्रो. सिल्वा पादप नामकरण (बोटैनिकल नोमेनक्लेचर) में भी विशेषज्ञता हासिल की थी। इसीलिए वे वर्ष 1981 से 2004 तक आईसीएन यानी *इंटरनेशनल कोड ऑफ नोमेनक्लेचर फॉर अल्गी, फंगी एंड प्लांट्स* में एडिटोरियल कमेटी में रहे एवं इसके विभिन्न संस्करणों के प्रकाशन में महत्वपूर्ण भूमिका निभाते रहे।

प्रो. सिल्वा वर्ष 2004 में यूनिवर्सिटी ऑफ कैलिफोर्निया से सेवानिवृत्त हुए। लेकिन इसके बावजूद भी वह हमेशा शैवाल अनुसंधान से जुड़े रहें और अपना योगदान देते रहें। आधुनिक वैश्विक शैवाल अध्ययन में प्रो. सिल्वा का बहुत ही सराहनीय योगदान रहा है। उनका निधन लगभग 92 वर्ष की आयु मे 12 जून 2014 को कैलिफोर्निया में हो गया। उनके निधन से शैवाल अध्ययन एवं अनुसंधान के क्षेत्र में बहुत नुकसान हुआ है। हालांकि प्रो. सिल्वा अब हमारे बीच नहीं रहे लेकिन वैश्विक शैवाल विज्ञान के क्षेत्र में उनके योगदान को कभी नहीं भुलाया जा सकता हैऔर वे हमेशा नई पीढ़ी के शैवलविज्ञों के लिए प्रेरणाश्रोत बने रहेंगे। अतः प्रो. सिल्वा एक महान शैवालविद थे।

स्वच्छ और सुन्दर देश हो अपना।
पर्यावरण संरक्षण जब हो हमारा सपना।।

कुदरत का कहर

आर. के. गुप्ता
भारतीय वनस्पति सर्वेक्षण, हावड़ा

गत कुछ वर्शो से,
मैंने कुदरत का कहर देखा।
शहरों के बीच मैंने उसके,
रौद्र रूप का लहर देखा।

पुलों को बहता देखा,
सड़कों को धंसते देखा।
पहाड़ो को दरकते देखा,
घरों को मलबे में तबदील होते देखा।

बह गई जिन्दगियां कितनी,
बह गये कितने पेड़।
उजड़ गए कितने चमन,
लगा चारों ओर मलबे का ढेर।

कुदरत जब जुल्म ढाता है,
रह - रह बादल कट जाता है।
जमीदोंज हो जाते है घर,
जीते - जी कब्र बन जाता है।

चीख - चीख धरती रही पूकार,
तुमने मुझपर किए कितने अत्याचार।
सूख गई मेरी छाती,
आंचल तुमने दिया उतार।

अब तुम क्या सोचते हो,
रह - रह क्यों कोसते हो।
जो तुमने बोया है,
वही तो काट रहे हो।

एक विचार मेरे मन में कौंधी,
क्या ऐसी होती है प्रगति।
ये कैसी उन्नति है,
जो मानव से सब छीन तेती है।

चित्रांकन: दिगंतो दास

बहुत किया खिलवाड़ धरा से

सौरभ सचान, वनस्पति सहायक
भारतीय वनस्पति सर्वेक्षण, इलाहाबाद

बहुत किया खिलवाड़ धरा से,
इस मनुष्य की चाह ने
पूरी फिर भी कर न सका वो,
कुछ पाने की आस में
बहुत किया खिलवाड़ धरा से II
जंगल जंगल नष्ट कर दिए
कह विकास की कुछ बातें,
जीव जंतुओं का घर छीना
खुद के घर की आस में
बहुत किया खिलवाड़ धरा से II

नदियों के प्रवाह को रोका
बांध बनाकर बड़े बड़े,
फिर भी पानी को है तरसे
कंठ है सूखे प्यास में
बहुत किया खिलवाड़ धरा से II
ऊर्जा का दुरूपयोग कर रहा
विज्ञान के नाम पर,
प्रलय का मायाजाल बुन दिया
नूतन प्रयोग के नाम पे
बहुत किया खिलवाड़ धरा से II
सब कुछ तहस नहस कर डाला
नित विकास के नाम पर,
धरती का चिंतन भी त्यागा
निज स्वार्थ के नाम पे
बहुत किया खिलवाड़ धरा से II
अब तो अपनी आंखें खोलो
धरती का दुःखी हृदय टटोलो,
अब विराम इच्छाओं को दो
काम रखो सत्काम से
बहुत किया खिलवाड़ धरा से II
नदियों का रुख़ अब न मोड़ो
विज्ञान का सार निचोड़ो,
मानव को प्रकृति से जोड़ो
सर्व रक्षा के नाम पे,
बहुत किया खिलवाड़ धरा से II

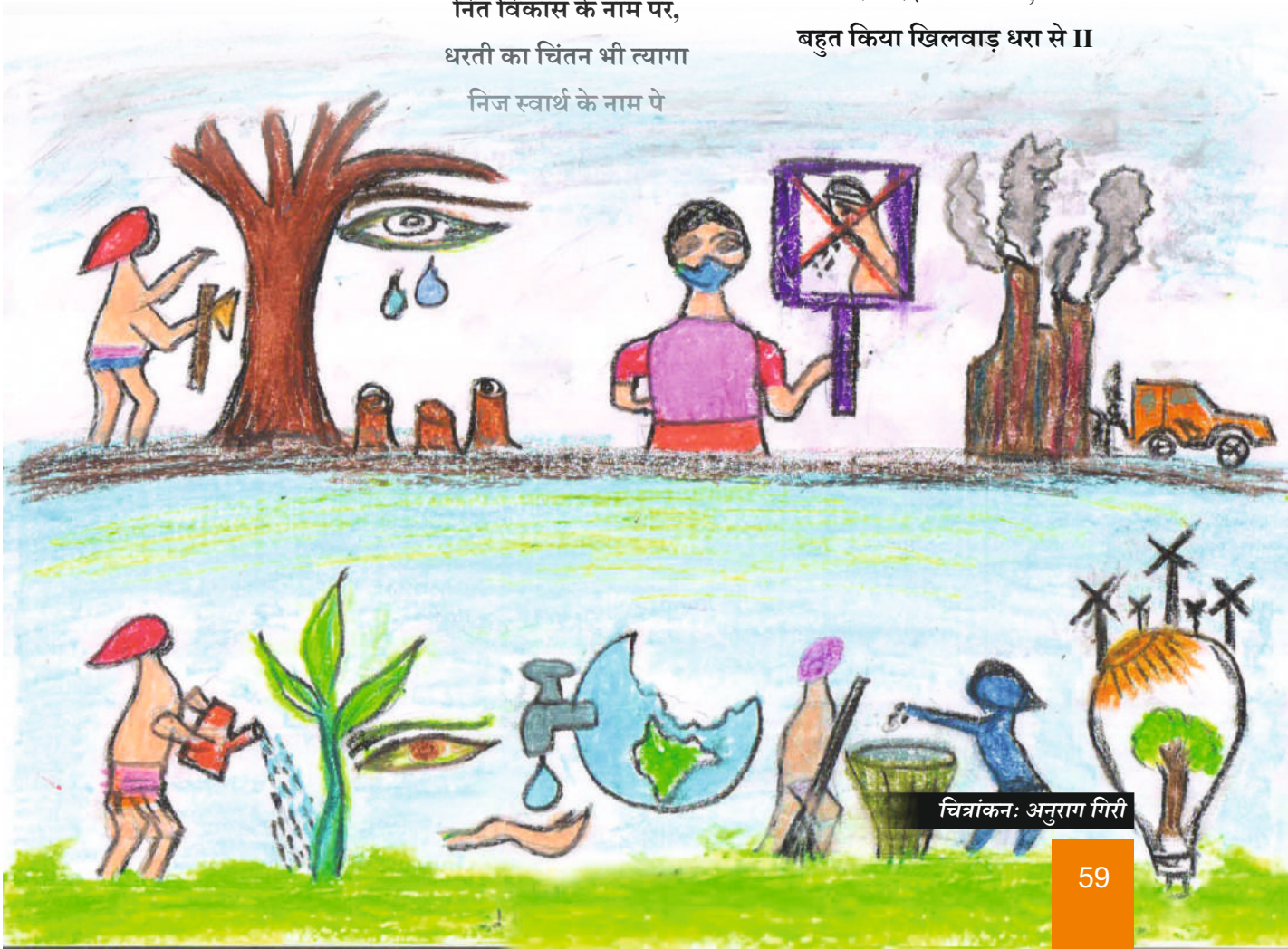

चित्रांकन: अनुराग गिरी

विविध जानकारियां

कैलाश प्रसाद कुशवाहा
भारतीय वनस्पति सर्वेक्षण, कोलकाता

1. ब्रह्मकमल पुष्प : ब्रह्मकमल उत्तराखंड का राजकीय पुष्प है। इसे हिमालयी पुष्पों का राजा भी कहा जाता है। इसका वैज्ञानिक नाम सौसुरिया ओबवलाटा है। इसका नामकरण भगवान् ब्रह्म पर आधारित है। यह सुख-समृद्धि प्रदायक माना जाता है। इसे केदारनाथ, बद्रीनाथ तथा अन्य कई पवित्र मंदिरों में भगवान् को अर्पित किया जाता है। स्थानीय लोग इसे घाव एवं चोट के उपचार में सामान्यतः उपयोग करते हैं। इस पुष्प का तिब्बती चिकित्सा पद्यति एवं आयुर्वेद में भी खास महत्त्व है। वर्त्तमान में वैश्विक तापन, वनों की कटाई एवं मानव अतिक्रमण के कारण इसका संकुचन हो रहा है।

2. वन सन, वन वर्ल्ड, वन ग्रिड : इसके अंतर्गत भारत सरकार की योजना है कि नवीकरणीय ऊर्जा संसाधनों के स्रोतों को जोड़कर एक विश्व-स्तरीय पारिस्थितिकी तंत्र की स्थापना की जाए। सूर्य ऊर्जा का वैश्विक ग्रिड के द्वारा अधिकतम दोहन करना ही इस योजना का उद्देश्य है। इस विचार को भारतीय प्रधानमंत्री श्री नरेंद्र मोदी द्वारा वर्ष 2018 में अंतर्राष्ट्रीय सौर गठबंधन की पहली महासभा के दौरान दिया गया था। इसे विश्व बैंक की तकनीकी सहायता कार्यक्रम के तहत बढ़ावा दिया जा रहा है। इससे सौर ऊर्जा को सर्वसुलभ करने में सहायता होगी।

3. एयरोसोल रेडियोएक्टिव फोर्सिंग : एयरोसोल रेडियोएक्टिव फोर्सिंग द्वारा जलवायु को प्रभावित करने वाले कारकों की प्रभावशीलता को मापा जाता है। इसके अलावे यह एक सूचकांक के रूप में किसी कारक की संभावित जलवायु परिवर्तन प्रणाली को भी बताता है। इसे वाट प्रति वर्ग मीटर में व्यक्त किया जाता है। आर्यभट्ट रिसर्च इंस्टीट्यूट ऑफ ऑब्जर्वेशनल साइंसेज, नैनीताल ने यह पता लगाया है कि ट्रांस-हिमालय क्षेत्र में एयरोसोल रेडियोधर्मी दबाव वैश्विक औसत की तुलना में अधिक है।

4. रामसर अभिसमय 1971 : यह एक अंतर्राष्ट्रीय संधि है जिसका उद्देश्य विश्व की चयनित आद्रभूमियों के पारिस्थितिकी को संरक्षित करना है। इस संधि पर ईरान के रामसर में विभिन्न पक्षकारों द्वारा हस्ताक्षर किया गया था। इसके अंतर्गत आद्रभूमियों के एक वैश्विक नेटवर्क का विकास किया जा रहा है। रामसर स्थलों को अंतर्राष्ट्रीय महत्व की आद्रभूमि की सूची में शामिल किया गया है। भारत में क्षेत्रफल की दृष्टि से सबसे बड़ा रामसर स्थल पश्चिम बंगाल स्थित सुंदरबन आद्रभूमि है तथा क्षेत्रफल की दृष्टि से सबसे छोटा रामसर स्थल हिमाचल प्रदेश स्थित रेणुका आद्रभूमि है। वर्ष 2020 में भारत की पांच आद्रभूमियों को रामसर स्थलों की सूची में स्थान दिया गया है - आसन संरक्षण आरक्षित क्षेत्र (उत्तराखंड), काबरताल आद्रभूमि (बिहार), लोनार झील (महाराष्ट्र), सुर सरोवर (उत्तर प्रदेश) तथा त्सो कर आद्रभूमि परिसर (संघक्षेत्र लद्दाख)।

5. भारत में मैंग्रोव : पर्यावरण,वन एवं जलवायु परिवर्तन मंत्रालय के रिपोर्ट के अनुसार भारत में मैंग्रोव वन 4,975 वर्ग किलोमीटर क्षेत्र में फैले हुए हैं। यह देश के कुल भौगौलिक क्षेत्रफल का केवल 0.15 प्रतिशत है। भारत में मैंग्रोव वन पश्चिम बंगाल, गुजरात तथा अंडमान एवं निकोबार द्वीपसमूह में केंद्रित है। पश्चिम बंगाल स्थित सुंदरबन मैंग्रोव विश्व का सबसे बड़ा मैंग्रोव वन है तथा यह गंगा डॉलफिन, ज्वारनदमुखी मगरमच्छ तथा अन्य अन्य वन्यप्राणियों के साथ बंगाल टाइगर का भी निवासस्थल है। गोदावरी-कृष्णा मैंग्रोव, अंडमान एवं निकोबार स्थित बारातांग द्वीपीय मैंग्रोव एवं तमिलनाडु स्थित पिछावरम मैंग्रोव अन्य महत्वपूर्ण मैंग्रोव स्थल है। भारत में अभी तक लगभग 40% मैंग्रोव क्षेत्र कृषि, जलाधारित कृषि, पर्यटन, शहरी विकास तथा अत्यधिक दोहन के कारण लुप्त हो गया है।

6. पीटभूमि : पीटभूमि पादप सामग्री जैसे मॉस, ह्यूमस आदि का विषमांगी मिश्रण होती। पादप सामग्रियां संतृप्त जलीय क्षेत्र में संचयित

होती रहती हैं तथा ऑक्सीजन की उपस्थिति में इनका आंशिक विघटन होता है। विश्व की सम्पूर्ण भूमि का केवल 3% हिस्सा पीटभूमि से आच्छादित है और ये क्षेत्र संसार के सबसे बड़े प्राकृतिक कार्बन भण्डार है। क्षतिग्रस्त पीटभूमि ग्रीनहाऊस गैस उत्सर्जन का एक प्रमुख स्रोत है।

७. भारत की प्रथम डॉलफिन वेधशाला: 'गंगा नदी डॉलफिन' भारत का राष्ट्रीय जलीय जीव है। इनके श्वास लेने के दौरान उत्पन्न होने वाली ध्वनि के कारण इनको 'सुसु' के नाम से भी जाना जाता है। डॉलफिन नेत्रहीन होता है। आदरणीय प्रधानमंत्री ने डॉलफिन की आबादी बढ़ाने के लिए प्रोजेक्ट डॉलफिन की भी घोषणा की है। बिहार सरकार द्वारा भागलपुर जिले के लिए भारत की प्रथम वेधशाला स्थापित की जा रही है। इसका उद्देश्य पारिस्थितिक-पर्यटन को बढ़ावा देना है।

8. जैव विविधता का सुपर वर्ष : वर्ष 2010 में अपनाए गए 20 वैश्विक आईची लक्ष्यों के साथ जैव-विविधता हेतु रणनीतिक योजना की समाप्ति वर्ष 2020 में होने के कारण इस वर्ष को जैव विविधता का सुपर वर्ष को घोषित किया गया।

9. उत्तराखंड वन विभाग द्वारा राज्य के पिथौरागढ़ जिले के मुनस्यारी में देश का प्रथम लाइकेन पार्क स्थापित किया गया है।

10. हरित पथ : यह एक मोबाइल एप है जो देश भर में हरित राजमार्ग के निर्माण की सुविधा प्रदान करेगा। यह राजमार्ग वृक्षारोपण परियोजनाओं के तहत पौधों का स्थान, वृद्धि अनुरक्षण गतिविधियों लक्ष्यों आदि की निगरानी करेगा।

राजभाषा प्रोत्साहन योजनाएं

केंद्रीय हिंदी प्रशिक्षण संस्थान/हिंदी शिक्षण योजना की परीक्षाएँ उत्तीर्ण करने पर केंद्रीय सरकार के कर्मचारियों को मिलने वाले वित्तीय प्रोत्साहन (वैयक्तिक वेतन, नकद पुरस्कार, एकमुश्त पुरस्कार आदि)

1. वैयक्तिक वेतन— हिंदी भाषा, हिंदी शब्द संसाधन/हिंदी टंकण एवं हिंदी आशुलिपि की परीक्षाएँ उत्तीर्ण करने पर केंद्र सरकार के अधिकारियों/कर्मचारियों को 12 महीने की अवधि के लिए एक वेतन वृद्धि के बराबर का वैयक्तिक वेतन दिया जाता है।

(क) प्रबोध परीक्षा— वैयक्तिक वेतन केवल उन्हीं अराजपत्रित कर्मचारियों को दिया जाता है जिनके लिए प्रबोध पाठ्यक्रम अंतिम पाठ्यक्रम के रूप में निर्धारित किया गया है और जो इस परीक्षा को 55 प्रतिशत या अधिक अंक लेकर उत्तीर्ण करते हैं। राजपत्रित अधिकारियों को प्रबोध परीक्षा उत्तीर्ण करने पर वैयक्तिक वेतन नहीं दिया जाता है।

—[का0ज्ञा0 सं0-12014/2/76-रा0भा0 (डी.) दिनांक 2.9.1976पैरा 1(3)]

(ख) प्रवीण परीक्षा— वैयक्तिक वेतन केवल उन्हीं अधिकारियों/कर्मचारियों को दिया जाता है जिनके लिए प्रवीण पाठ्यक्रम अंतिम पाठ्यक्रम के रूप में निर्धारित किया गया है-

(1) अराजपत्रित कर्मचारियों को 55 प्रतिशत या अधिक अंक लेकर प्रवीण परीक्षा उत्तीर्ण करने पर।

(2) राजपत्रित अधिकारियों को 60 प्रतिशत या अधिक अंक लेकर प्रवीण परीक्षा उत्तीर्ण करने पर।

—[(का0ज्ञा0सं012014/2/76-रा0भा0(डी.)/दिनांक 2.9.1976पैरा 1(2)]

(ग) प्राज्ञ परीक्षा- वैयक्तिक वेतन केवल उन्हीं सरकारी अधिकारियों/ कर्मचारियों (राजपत्रित /अराजपत्रित) को प्राज्ञ परीक्षा उत्तीर्ण करने पर दिया जाता है। जिनके लिए यह पाठयक्रम अंतिम पाठ्यक्रम के रूप में निर्धारित किया गया है।

(1) अराजपत्रित कर्मचारियों को उत्तीर्णांक लेकर प्राज्ञ परीक्षा उत्तीर्ण करने पर।

(2) राजपत्रित अधिकारियों को 60 प्रतिशत या अधिक अंक लेकर प्राज्ञ परीक्षा उत्तीर्ण करने पर।

—[(का0ज्ञा0सं0- 12014/2/76-रा0भा0(डी.)/दिनांक 2.9.1976पैरा 1(1)

तथा का0ज्ञा0सं0- 12014/1/78-रा०भा०(डी.) दिनांक 14.2.1979)]

(घ) हिंदी शब्द संसाधन/हिंदी टंकण— हिंदी शब्द संसाधन / हिंदी टंकण की परीक्षा उत्तीर्ण करने वाले केंद्र सरकार के अराजपत्रित कर्मचारियों को एक वेतन वृद्धि के बराबर 12 महीने की अवधि के लिए वैयक्तिक वेतन दिया जाता है। इसके अतिरिक्त सहायक, अनुवादक, प्रवर श्रेणी लिपिक तथा प्रवर लेखा परीक्षक, जिनके लिए हिंदी टंकण का प्रशिक्षण अनिवार्य नहीं है पर उपयोगी है, को अवर श्रेणी लिपिकों की भांति ही उक्त वित्तीय प्रोत्साहन तथा अन्य सुविधाएँ इस संबंध में जारी की गई विभिन्न शर्तों के अधीन दी जाती हैं।

—[(का0ज्ञा0सं0 12014/2/76-रा0भा0(डी.)/दिनांक 2.9.1976पैरा 1(4)]

तथा (का0ज्ञा0सं0-12016/2/78-रा0भा0(डी.) दिनांक 10.1.1979 क्रमसंख्या-92)

(ङ) हिंदी आशुलिपि— (i) अराजपत्रित आशुलिपिकों को 70 प्रतिशत या अधिक अंक लेकर हिंदी आशुलिपि की परीक्षा उत्तीर्ण करने पर 12 महीने के लिए एक वेतन वृद्धि, जो आगामी वेतन वृद्धि में मिला दी जाती है, के बराबर वैयक्तिक वेतन दिया जाता है।

(ii) राजपत्रित आशुलिपिकों को ७५ प्रतिशत या अधिक अंक लेकर हिंदी आशुलिपि परीक्षा उत्तीर्ण करने पर वैयक्तिक वेतन दिया जाता है।

जिन आशुलिपिकों (राजपत्रित एव अराजपत्रित दोनों) की मातृभाषा हिंदी नहीं है, उन्हें हिंदी आशुलिपि की परीक्षा उत्तीर्ण करने पर दो वेतन वृद्धियों के बराबर वैयक्तिक वेतन दिया जाता है। ये वेतन वृद्धियां भावी वेतन वृद्धियों में मिलाई जाएँगी। ऐसे कर्मचारी पहले वर्ष दो वेतन वृद्धियों के बराबर और दूसरे वर्ष पहली वेतन वृद्धि को मिला दिए जाने पर केवल एक वेतन वृद्धि के बराबर वैयक्तिक वेतन प्राप्त कर सकते हैं।

[का0ज्ञा0सं0-12014/2/76/रा0भा0(डी.) दिनांक 2.09.1976)

(का0ज्ञा0सं0-21034/08/2017/रा0भा0(प्रशि) दिनांक 26.07.2017]

टिप्पणी: जिस कर्मचारी को सेवाकालीन हिंदी प्रशिक्षण से छूट मिली हुई हो उस कर्मचारी को संबंधित परीक्षा उत्तीर्ण करने पर किसी प्रकार के वित्तीय लाभ/ प्रोत्साहन नहीं मिलेंगे।

2 नकद पुरस्कार - हिंदी प्रबोध, प्रवीण, प्राज्ञ, हिंदी शब्द संसाधन/हिंदी टंकण और हिंदी आशुलिपि की परीक्षाएँ अच्छे अंकों से उत्तीर्ण करने पर पात्रता के अनुसार निम्नलिखित नकद पुरस्कार प्रदान किए जाते हैं, जिनकी वर्तमान दरें निम्नानुसार हैं-

(क) प्रबोध

- 70 प्रतिशत या इससे अधिक अंक प्राप्त करने पर रु.1600/-
- 60 प्रतिशत या इससे अधिक परंतु 70 प्रतिशत से कम अंक प्राप्त करने पर रु. 800/-
- 55 प्रतिशत या इससे अधिक परंतु 60 प्रतिशत से कम अंक प्राप्त करने पर रु. 400/-

(ख) प्रवीण

- 70 प्रतिशत या इससे अधिक अंक प्राप्त करने पर रु.1800/-,
- 60 प्रतिशत या इससे अधिक परंतु 70 प्रतिशत से कम अंक प्राप्त करने पर रु.1200/-
- 55 प्रतिशत या इससे अधिक परंतु 60 प्रतिशत से कम अंक प्राप्त करने पर रु.600/-

(ग) प्राज्ञ

- 70 प्रतिशत या इससे अधिक अंक प्राप्त करने पर रु.2400/-
- 60 प्रतिशत या इससे अधिक परंतु 70 प्रतिशत से कम अंक प्राप्त करने पर रु.1600/-
- 55 प्रतिशत या इससे अधिक परंतु 60 प्रतिशत से कम अंक प्राप्त करने पर रु.800/-

(४) हिंदी शब्द संसाधन/हिंदी टंकण

- 97 प्रतिशत या इससे अधिक अंक प्राप्त करने पर रु.2400/-
- 95 प्रतिशत या इससे अधिक परंतु 97 प्रतिशत से कम अंक प्राप्त करने पर रु.1600/-
- 90 प्रतिशत या इससे अधिक परंतु 95 प्रतिशत से कम अंक प्राप्त करने पर रु.800/-

(५) हिंदी आशुलिपि

- 95 प्रतिशत या इससे अधिक अंक प्राप्त करने पर रु.2400/-

- 92 प्रतिशत या इससे अधिक परंतु 95 प्रतिशत से कम अंक प्राप्त करने पर रु.1600/
- 88 प्रतिशत या इससे अधिक परंतु 92 प्रतिशत से कम अंक प्राप्त करने पर रु.800/-

(६) निजी प्रयत्नों से हिंदी शिक्षण योजना की हिंदीभाषा, हिंदी शब्द संसाधन/हिंदी टंकण एवं हिंदी आशुलिपि परीक्षाएँ उत्तीर्ण करने पर एकमुश्त पुरस्कार

- हिंदी शिक्षण योजना की प्रबोध परीक्षा रु.1600/-
- हिंदी शिक्षण योजना की प्रवीण परीक्षा रु.1500/-
- हिंदी शिक्षण योजना की प्राज्ञ परीक्षा रु.2400/-
- हिंदी शिक्षण योजना की हिंदी शब्द संसाधन/ हिंदी टंकण परीक्षा रु.1600/-
- हिंदी शिक्षण योजना की हिंदी आशुलिपि परीक्षा रु.3000/-

(का0ज्ञा0सं0- 21034/66/10-रा0भा0 (प्रशि) दिनांक 29.7.2011)

टिप्पणी:

1. जिन कर्मचारियों को हिंदी के सेवाकालीन प्रशिक्षण से छूट प्राप्त है उन्हें संबंधित स्तर की हिंदी परीक्षा उत्तीर्ण करने पर नकद एवं एकमुश्त पुरस्कार देय नहीं होंगे।

2. एकमुश्त पुरस्कार प्रचालन कर्मचारियों के अतिरिक्त केवल उन्हीं कर्मचारियों को दिया जाएगा जो ऐसे स्थानों पर तैनात हैं जहाँ हिंदी शिक्षण योजना के प्रशिक्षण केंद्र नहीं हैं अथवा जहाँ संबंधित पाठ्यक्रम के प्रशिक्षण की व्यवस्था नहीं है।

3. जो प्रशिक्षार्थी निजी प्रयत्नों से हिंदी शिक्षण योजना की हिंदी भाषा, हिंदी शब्द संसाधन/हिंदी टंकण एवं हिंदी आशुलिपि परीक्षाएँ उत्तीर्ण करते हैं उनको एक मुश्त पुरस्कार के अलावा नकद पुरस्कार प्रदान करते समय निर्धारित किए गए प्रतिशत से पाँच प्रतिशत अंक कम प्राप्त करने पर भी नकद पुरस्कार राशि प्रदान की जाएगी।

(का0ज्ञा0सं0- 21034/66/2010/रा0भा0(प्रशि0). दिनांक 29.07.2011)

लेखकों के लिए निर्देश

सभी लेखक वनस्पति वाणी में प्रकाशन हेतु रचनाएं भेजते समय निम्नलिखित बातों का ध्यान रखें:

- लेखक अपनी रचनायें भेजते समय लेख के अंत में संदर्भों (अधिकतम 5) का उल्लेख अवश्य करें।
- रचना वनस्पति विज्ञान की किसी महत्वपूर्ण सूचना, अनुसंधान, उपयोग, महत्व इत्यादि से संबंधित एवं मौलिक होनी चाहिए तथा रचना की विषय वस्तु विगत वर्षों में प्रकाशित रचनाओं से भिन्न हो। रचनाएं ए-4 आकार के कागज पर 12 फॉन्ट साइज एवं द्विपंक्ति अन्तर में टंकित अथवा सुपाठ्य एवं स्पष्ट रुप से हस्तलिखित होनी चाहिये। वर्तनी एवं व्याकरण पर विशेष ध्यान दें। प्रयास करें कि लेख की पांडुलिपि 10 टंकित पृष्ठों से अधिक न हो तथा छाया चित्रों की अधिकतम दो ही प्लेटें हों।
- कविताएं प्रस्तुत करते समय ध्यान रखें कि कविता का मूल भाव स्पष्ट रहें एवं कविता तुकान्त हों।
- वर्गीकरण शब्दावली का प्रयोग Class - वर्ग, Order - गण, Family - कुल, Genus - वंश, Species - जाति, Sub-species - उपजाति, Variety - प्रभेद, Form - रुप में करें। तथा टंकित रचनाओं में वंश एवं जाति का नाम तिरछे (*italic*) में एवं हस्तलिखित रचनाओं में रेखांकित (underline) करें।
- वनस्पतियों के नाम लिखते समय ध्यान रखें कि सबसे पहले वनस्पति का प्रचलित नाम तत्पश्चात् यदि आवश्यक हो तो वनस्पतियों के क्षेत्रीय नामों का प्रयोग प्रचलित के बाद किया जाये।
- एक ही लेख में एक ही तथ्य की बार-बार पुनरावृत्ति से बचें।
- औषधीय उपयोग से संबंधित लेखों में रोगों के प्रचलित हिंदी नामों का प्रयोग करें। अंग्रेजी नामों को अपरिहार्य स्थिति में देवनागरी लिपि में लिखें।
- जहाँ तक संभव हो लेख को सहज एवं सरल रुप प्रस्तुत करें, जिससे सभी पाठक सुगमता से समझ सकें।
- लेख में सम्मिलित फोटो-प्लेट्स के साथ इसमें उपयोग किये गये छायाचित्रों की अलग (JPEG) फाइल भी भेजें एवं छायाचित्रों की प्लेटें बनाते समय लिजेन्ड में संख्यागत क्रम (1,2,3.....) का प्रयोग करें, प्लेटों पर प्रयोग किये गये चित्रों की मूल प्रति अनिवार्यतः उपलब्ध करवाएं।
- इन्टरनेट से लिये गये चित्रों का प्रयोग कदापि न करें तथा कॉपीराइट नियमों का उल्लंघन नहीं करें।
- रचनाओं में दिये गये तथ्यों एवं सूचनाओं के लिये लेखक स्वयं उत्तरदायी होंगे, अतः तथ्यपूर्ण एवं वैज्ञानिक रचनायें ही भेजें।
- विभिन्न क्षेत्रीय कार्यालयों के कार्यालयअध्यक्षों से अपेक्षा है कि वे अपने स्तर पर लेखों/कविताओं का मूल्यांकन एवं सम्पादन कर, मुख्यालय को प्रेषित करें।

राजभाषा हिंदी से संबंधित विविध जानकारियां

हिंदी शिक्षण योजना के अधीन प्रबोध, प्रवीण व प्राज्ञ के संबंध में महत्वपूर्ण सूचनाएं

प्रबोध: यह प्रशिक्षण प्रारम्भिक स्तर का है। इसमें कन्नड, तमिल, मलयालम, तेलगु, अंग्रेजी और मणिपुरी/मिजो भाषा-भाषी अधिकारी/कर्मचारी जिन्हें प्राइमरी स्तर का भी हिंदी का ज्ञान नहीं हैं, प्रबोध प्रशिक्षण के पात्र हैं।

प्रवीण: यह पाठ्यक्रम माध्यमिक स्तर का है। इसमें प्रबोध परीक्षा उत्तीर्ण तथा गुजराती, मराठी, बंगला, असमिया और उड़िया भाषा-भाषी अधिकारी और कर्मचारी जिन्हें माध्यमिक स्तर तक का हिंदी का ज्ञान नहीं है, वे प्रवीण में प्रवेश पा सकते हैं।

प्राज्ञ: इस पाठ्यक्रम में प्रवीण परीक्षा उत्तीर्ण अधिकारी/कर्मचारी तथा अन्य हिंदीतर भाशी कर्मचारी जिनकी मातृभाषा पंजाबी, उर्दू, कश्मीरी, तथा पश्तों है और जिन्हें मैट्रिक स्तर का हिंदी का ज्ञान नहीं है, प्रशिक्षण हेतु पात्र हैं।

हिंदी में प्रवीणता- यदि किसी कर्मचारी के

(क) मैट्रिक परीक्षा या उसकी समतुल्य या उससे उच्चतर कोई परीक्षा हिंदी में उत्तीर्ण कर ली है, या

(ख) स्नातक परीक्षा में अथवा स्नातक परीक्षा की समतुल्य या उससे उच्चतर किसी अन्य परीक्षा में हिंदी एक वैकल्पिक के रूप में लिया था या

(ग) यदि वह इन नियमों कें उपाबद्ध प्रारूप में यह घोषणा करता है कि उसे हिंदी में प्रवीणता प्राप्त है, तो उसके बारे में यह समझा जाएगा कि उसने हिंदी के प्रवीणता प्राप्त कर ली हैं।

हिंदी में कार्यसाधक ज्ञान - यदि किसी कर्मचारी ने

(क) मैट्रिक परीक्षा या उसकी समतुल्य या उससे उच्चतर परीक्षा हिंदी विषय के साथ उत्तीर्ण कर ली है, या केन्द्रीय सरकार की हिंदी प्रशिक्षण योजना के अंतर्गत आयोजित प्राज्ञ परीक्षा या यदि उसने सरकार द्वारा किसी विशिष्ट प्रवर्ग के पदों के संबंध में उस योजना के अंतर्गत कोई निम्नतर परीक्षा विनिर्दिष्ट है, वह परीक्षा उत्तीर्ण ली है , या केन्द्रीय सरकार द्वारा उस निमित्त विनिर्दिष्ट कोई अन्य परीक्षा उत्तीर्ण कर ली है या यदि वह इन नियमों कें उपाबद्ध प्रारूप में यह घोषणा करता है कि उसने ऐसा ज्ञान प्राप्त कर लिया है, तो उसके बारे में यह समझाा जाएगा कि उसने हिंदी का कार्यसाधक ज्ञान प्राप्त कर लिया है।

राजभाषा प्रोत्साहन /पुरस्कार योजना

राजभाषा विभाग, गृह मंत्रालय के कार्यालय ज्ञापन संख्या 12013/18/93-रा.भा. दिनांक 16.9.98 के अंतर्गत सरकारी कामकाज (टिप्पण व आलेखन) मूल रूप से हिंदी में करने के लिए प्रोत्साहन योजना के तहत नकद पुरस्कार का प्रावधान है। इस योजना में कुल 10 पुरस्कारों का प्रावधान है। हिंदी में कार्य करने का मूल्यांकन हेतु 100 अंक होगें। इसमें से 70 अंक हिंदी में किये गये कार्य की मात्रा व 30 अंक विचारों के स्पष्टता के लिए होंगे। इसके तहत पदधारी अपने साल भर के कार्य उच्च अधिकारी सत्यापन करवाकर प्रस्तुत कर सकते है। पहला पुरस्कार (2 पुरस्कार) प्रत्येक रू 5000/-दूसरा पुरस्कार (3 पुरस्कार) प्रत्येक रू 3000/- तीसरा पुरस्कार (5 पुरस्कार) प्रत्येक रू 2000/-। 'क' व 'ख' क्षेत्र में आने वाले क्षेत्र के पदधारी को कम से कम 20,000 शब्द लिखने होंगे।

हिंदी दिवस/सप्ताह/पखवाड़ा/माह के आयोजन के संबंध में

हिंदी भाषा के देशव्यापी प्रसार और स्वीकार्यता को देखते हुए 14 सितंबर, 1949 को इस संघ की राजभाषा का दर्जा दिया गया था। इस दिवस की स्मृति में प्रति वर्ष 14 सितंबर को हिंदी दिवस के रूप में मनाया जाता है। (कार्यालय ज्ञापन संख्या 1/14034/2/87-रा.भा.(का)

दि.21. 4 .87। हिंदी पखवाड़ा के दौरान ऐसी प्रतियोगिताएं आयोजित की जाएं, जिनका संबंध सरकारी कामकाज से हो और साथ -साथ वह राजभाषा का प्रयोग बढ़ाने में सहायक हो।

पुरस्कार राशि एवं आयोजन पर होने वाले व्यय का निर्धारण मंत्रालय/विभाग/कार्यालय द्वारा अपने विवेकानुसार आंतरिक वित्त विभाग के अनुमोदन से किया जाए।

राजभाषा (संघ के शासकीय प्रयोजनों के लिए प्रयोग) नियम, 1976

नियम 8 (1) कोई कर्मचारी किसी फाइल पर टिप्पण या कार्यवृत हिंदी या अंग्रेजी में लिख सकता है।

उससे यह अपेक्षा नहीं की जाएगी कि वह उसका अनुवाद दूसरी भाषा में प्रस्तुत करें।

(2) उपनियम (1) किसी बात के होते हुए भी केन्द्रीय सरकार, आदेश द्वारा ऐसे अधिसूचित कार्यालयों को विनिर्दिष्ट कर सकती है जहां ऐसे कर्मचारियों द्वारा जिन्हें हिंदी में प्रवीणता प्राप्त है,टिप्पण,प्रारूपण और ऐसे अन्य शासकीय प्रयोजनों के लिए जो आदेश में विनिर्दि किए जाएं, केवल हिंदी का प्रयोग किया जाएगा

नियम 10(2) यदि केन्द्रीय सरकार के किसी कार्यालय में कार्य करने वाले कर्मचारियों/अधिकारियों में से 80 प्रतिशत ने हिंदी का कार्यसाधक ज्ञान प्राप्त कर लिया है तो उस कार्यालय के कर्मचारियों के बारे में सामान्यतः यह समझाा जाएगा कि उन्होंने हिंदी का कार्यसाधक ज्ञान प्राप्त कर लिया है।

नियम 10 (4) केन्द्रीय सरकार के जिन कार्यालयों के 80 प्रतिशत कर्मचारियों/अधिकारियों ने हिंदी का कार्यसाधक ज्ञान प्राप्त कर लिया है, उन कार्यालयों के नाम राजपत्र में अधिसूचित किये जायेगें।

राजभाषा नियम 1976 के नियम 12 के अनुसार केन्द्रीय सरकार के सभी कार्यालयों के प्रमुखों का यह दायित्व बनता है कि वे राजभाषा अधिनियम, नियमों तथा समय -समय पर राजभाषा विभाग से जारी निर्देशों का अनुपालन सुनिश्चित करें।

भारतीय वनस्पति सर्वेक्षण, कोलकाता द्वारा दिनांक 13 - 14 फरवरी 2020 को कोलकाता में आयोजित इंटरनेशनल सिंपोजियम ऑन प्लांट टैक्सोनॉमी एंड एथ्नोबॉटनी आईएसपीटीई-2020 की कुछ झलकियाँ: 1. मुख्य अतिथि श्री रवि अग्रवाल, भारतीय राजस्व सेवा, अपर सचिव, पर्यावरण, वन एवं जलवायु परिवर्तन मंत्रालय स्वागत भाषण देते हुए; 2. प्रो. ए. के. कौल, अध्यक्ष आरएएमसी, भारतीय वनस्पति सर्वेक्षण प्रतिभागियों को संबोधित करते हुए; 3. मुख्य अतिथि एवं अन्य सम्मानीय अतिथियों द्वारा उदघाटन सत्र में भारतीय वनस्पति सर्वेक्षण द्वारा प्रकाशित पुस्तकों का विमोचन करते हुए; 4. प्रतिभागियों की गरिमामयी उपस्थिति; 5 एवं 6. क्षेत्रीय आउटरीच ब्यूरो, कोलकाता, सूचना एवं प्रसार मंत्रालय के कलाकारों द्वारा सांस्कृतिक कार्यक्रम की प्रस्तुति।

7. आचार्य जगदीश चंद्र बोस भारतीय वनस्पति उद्यान, भारतीय वनस्पति सर्वेक्षण, हावड़ा में दिनांक 14 सितंबर, 2020 से 28 सितंबर, 2020 के दौरान "हिंदी पखवाड़ा, 2020" का आयोजन किया गया। इस पखवाड़ा का समापन दिनांक 28, सितंबर, 2020 को पुरस्कार वितरण समारोह के साथ हुआ।

8. 27 अक्टुबर से 2 नबन्वर, 2020 तक सतर्कता सप्ताह का पालन करते हुए केन्द्रीय राष्ट्रीय पादपालय मे शपथ ग्रहण समारोह।

श्री बाबुल सुप्रियो, माननीय राज्यमंत्री, पर्यावरण, वन एवं जलवायु परिवर्तन मंत्रालय केन्द्रीय राष्ट्रीय पादपालय, हावड़ा में भारतीय वनस्पति सर्वेक्षण के वैज्ञानिकों को संबोधित करते हुए।

भारतीय वनस्पति सर्वेक्षण द्वारा प्रकाशित "फ्लावरिंग प्लांट्स ऑफ इंडिया" का विमोचन करते हुए श्री बाबुल सुप्रियो, माननीय राज्यमंत्री पर्यावरण, वन एवं जलवायु परिवर्तन मंत्रालय, भारत सरकार, डॉ. कैलाश चंद्रा, निदेशक, भारतीय प्राणि सर्वेक्षण तथा डॉ. ए. ए. माओ, निदेशक, भारतीय वनस्पति सर्वेक्षण।

निदेशक, भारतीय वनस्पति सर्वेक्षण, सी. जी. ओ. कॉम्प्लेक्स, सॉल्ट लेक सिटी, कोलकाता -700 064 द्वारा प्रकाशित
ISSN 0975-4342